उत्तर भारत की प्रवास संस्कृति और गिरमिटिया मज़दूर

आशुतोष कुमार

प्रस्थान

यह लेख उत्तर भारत के किसानों के प्रवास की संस्कृति के इतिहास पर नज़र डालता है तथा आंतरिक और गिरमिट प्रवास के परस्पर संबंधों को समझने का प्रयास करता है। मेज़र पिचर और जॉर्ज ग्रियर्सन की 1882-83 की आधिकारिक नृजातीय रिपोर्टों के हवाले से क़रार-प्रथा संबंधी अवधारणाओं के प्रति किसानों की अपनी समझ व चेतना की छानबीन करता है। साथ ही इन दो समृद्ध आधिकारिक जाँच रिपोर्टों की आलोचनात्मक पड़ताल भी करता है। प्रभावशाली इतिहासलेखनों में इतिहासकारों ने गिरमिटिया प्रवास को औपनिवेशिक काल के दबाव या बलात् भेज देने, जिसमें भर्ती के समय झूठ या प्रलोभन देना भी शामिल है, के रूप में चित्रित किया है। यह लेख विभिन्न प्रकार के सरकारी तथा ग़ैर सरकारी स्रोतों के द्वारा इन धारणाओं की समीक्षा करता है और निष्कर्ष स्वरूप वैकल्पिक दृष्टिकोण को स्थापित करता है। यह लेख तर्क देता है कि उत्तर भारतीय कृषकों के लिए प्रवास कोई नई घटना नहीं रही है और औपनिवेशिक काल में गिरमिट के रूप में भी कृषक – मज़दूरों का समुद्रपारीय प्रवास उन्हीं आंतरिक प्रवास का एक वृहत रूप था। फ़र्क़ सिर्फ़ ये था कि आंतरिक प्रवास में कृषक-मज़दूरों का घर आना-जाना आसान था जबकि गिरमिट के रूप में समुद्रपारीय प्रवास में शीघ्र लौटना मुश्किल था।

नौकरी के लिए प्रवास की संस्कृति

औपनिवेशिक भारत में समुद्रपारीय प्रवास और उससे जुड़ी बातों को समझने के लिए उत्तर भारत में सुदूर प्रवास के पूर्वइतिहास पर विचार करना आवश्यक है। उत्तर भारत में किसानों के प्रवास की संस्कृति सल्तनत काल से ही देखी जा सकती है। 15वीं सदी में इस क्षेत्र में प्रचलित लोकप्रिय कविताओं और लोकवांग्मय में इसके पुख़्ता सबूत मिलते हैं। पंद्रहवीं सदी के इस क्षेत्र में प्रचलित लोकप्रिय कविताएँ और लोककथाएँ पति-पत्नी के विरह को प्रकट

करती हैं जिनमें पति अपने दूरस्थ मालिक के व्यापार व कार्य हेतु सुदूर प्रवास पर होता था।[1] बक़ौल जैसा कि शाहिद अमीन ने सुझाया है, बरवै छंद में अब्दुर्ररहीम ख़ाने-ख़ानाँ की ऐसी ही एक कविता 16वीं सदी में ऐसे ही विरह पर केंद्रित है। मूल बरवै छंद की रचना अब्दुर्ररहीम ख़ाने-ख़ानाँ के एक मुलाज़िम की बीवी ने की थी, जिसका मक़सद उन नवविवाहित पत्नियों के प्रेम और दुख को व्यक्त करना था जो वे दूरदराज़ के मालिकों की ख़िदमत के लिए घर छोड़ चले जाने वाले पतियों से बिछड़ जाने पर महसूस करती हैं। सबसे पहले वाला बरवै इस प्रकार था : प्रेम पिरित का बिरवा चलेउ लगाई; सीचन की सुधि लीजौ, मुरझ न जाई। (प्रेम चाहत का नाज़ुक सा पौधा लगाकर तुम तो दूर चले गए; ध्यान रहे कि इसकी सिंचाई भी ज़रूरी है, नहीं तो यह मुरझा जाएगा।[2]

बारहमासा अर्थात् बारह महीनों के गीत भी विरह के विषय वस्तु पर रचे गए हैं। बकौल कोल्फ़, बारहमासे विरह के वे गीत हैं जिनमें पीछे छूट गई नवविवाहित स्त्रियाँ अपने अकेलेपन को, भुलाए जाने की भावना को और अपनी इच्छा को व्यक्त करती हैं।[3] पति और पत्नी के या प्रेमी और प्रेमिका के बिछड़ने को व्यक्त करने वाले बारहमासा-काव्य 1600 से पहले भी प्रचलित रहे हैं। पति का मौसमी अलगाव 'एक पशुपालक, व्यापारिक और युद्धजीवी समाज में' निरंतर पृष्ठभूमि में रहा है, जिसके कारण 'पति को घर लाने वाला बरसात का मौसम स्त्रियों की नज़र में एक शुभ समय होता है जिसकी वे राह देखती हैं।'[4] बरसातों के पहले महीने, यानि कि आषाढ़, में एक स्त्री एक गीत में अपनी भावनाओं को इस प्रकार से व्यक्त करती है :

> सारी सखियाँ अपने पिया के संग हैं सोई,
> मेरा मरद परदेस में बादल बन भटके है।[5]

एक और बारहमासा में बेचैनी से अपने पति के वापस आने की बाट जोह रही एक स्त्री बतलाती है कि एक-एक महीना गुज़ारते उसे कैसा महसूस होता है। प्यार के इस नाज़ुक एहसास को इस तरह से व्यक्त किया गया है :

---

[1] ग्रामीण भारत में विवाह, सांस्कृतिक दृष्टि से, परिवार से अलगाव की एक दशा होता है. राही मासूम रज़ा के उपन्यास *आधा गाँव* का आरंभ एक गाने से होता है : 'लागा झुलनिया का धक्का, बलम कलकत्ता पहुँच गए'. पृ.10. *आधा गाँव*, 2006 सातवाँ संस्करण : 10.

[2] अवधी काव्यधारा में बरवै छंद संबंधी लोकोक्तियों की विवेचना के लिए ख़िदमत या नौकरी के लिए छड़े (विवाहित) पुरुषों के प्रवास से इसके संबंध के बारे में शाहिद अमीन (2005), 'रेप्रेज़ेंटिंग द मुसलमान : देन ऐंड नाऊ', *सबाल्टर्न स्टडीज़* सीरिज़ खंड-12, नई दिल्ली : 21-22, परमानेंट ब्लैक देखें.

[3] डी. एच. ए. कोल्फ़ (1990) : 74-75.

[4] शार्लत वादविले (1965) : 57.

[5] डब्ल्यू. जी. आर्चर (1942), 'सीज़नल सॉन्स ऑफ़ पटना डिस्ट्रिक्ट', *मैन इन इंडिया*, अंक 22 : 233-37. इस गीत को चौमासा, अर्थात् चार मास से संबंधित कहा जाता है पर इसमें छह मास का वर्णन होता है.

कुआर कुसल नहिं पावा हो, केउ ना आवे ना जावे,
पतिया मैं लिखि-लिखि पठइबो हो, दिहे कांत के हाथ।
पूस पाल गइल हो, जाड़ ज़ोर बुजाय,
नव मन रुपइया भरइतो हो, बिनु सइयाँ जाड़ न जाय।
माघि के सिव तेरस हो, सिव बर होय तोहार,
फिर फिर चितवा मंदिरवा हो, बिनु पिया भवन उदास।
चइत फुले बन टेसू हो, जब के टुंड हहराय,
फूलत बाल गुलबवा हो, पिया बिनु मोहे न सुहाय।

बैसाखी बसाव कटइतो हो, रचि के बंगला छवाय
टोही से सोइते बलमउआ हो, अचर ने आद।[6]

उत्तर भारत के लोकगीतों में अपने पति से पत्नी के बिछड़ने का बेपनाह दर्द बयान हुआ है। गंगा की वादी में चैत के महीने में गाए जानेवाले गीत भी, जिनको चैतार, चइतार या चइता कहा जाता है, अपने पतियों द्वारा पीछे छोड़ दी गई स्त्रियों के विरह के दुख को दिखलाते हैं। कुछ गीतों में नौजवान स्त्रियों को अपनी ननद से अपनी इच्छा और दुख को बाँटते देखा जा सकता है, और कुछ में वे अपनी ये भावनाएँ व्यक्त करती हैं कि 'नीक सइयाँ बिन भवनवा नाहिं लागे सखिया।' जी.ए. ग्रियर्सन ने उत्तर भारत के गाँवों से ऐसे गीतों का एक बड़ा भंडार जमा किया है। कुछ गीत इस प्रकार हैं:

ननदी सइयाँ नहि आवे, डाल पत्ता झुकि मतवलवा
चोलिया से जोबना बड़ भइली ननदी, कइसे करि के छुपाय।[7]

भावे नाहिं मोहि भवनवा, हो रामा, बिदेस गवनवा,

---

[6] जी.ए. ग्रियर्सन (1884), परिशिष्ट एक, सेवेन ग्रामर्स ऑफ़ द डॉयलेक्ट्स ऐंड सब - डॉयलेक्ट्स ऑफ़ बिहारी लैंग्वेज़, पार्ट-2, कलकत्ता, शाहिद अमीन (सं), ए कन्साइज इंसाइकलोपीडिया ऑफ़ नॉर्थ इंडियन पेज़ंट, पूर्वोक्त : 372 पर उद्धृत. (अनु.) आसिन कुआर में मुझे कोई अच्छी ख़बर नहीं मिलती: कोई आता-जाता नहीं। मैं पाती लिखकर भेज देती हूँ. प्रार्थना करती हूँ कि इसे मेरे कांत (प्रिय) के हाथ में देना / पूस में पाला पड़ता है, और ठंड अपना ज़ोर दिखाती है. अपनी रज़ाई में मैं नौ मन रूई भर लूँ तो भी मेरे बलम के न रहने पर जाड़ा नहीं जाने का / माघ की तेरहवीं को सिव (भगवान शिव) का भोज होता है; तुझ पर सिव की कृपा बनी रहे! जब भी मैं पलटकर अपने घर को देखती हूँ, (क्या देखती हूँ कि) बलम के बिना मेरा घर उदास-उदास है / चैत में जंगल में पलाश के फूल खिलते हैं और जौ की फ़सल (हवा में) सरसराती है; चमेली और गुलाब खिल रहे हैं, पर पिया के बिना वे मुझे नहीं भाते. / बैसाख में मैं बाँस कटवाकर बँगला छवा लेती। मेरे पिया जब उसमें सोते तो मैं अपने आँचल से उनको हवा करती.

[7] जी.ए. ग्रियर्सन, शाहिद अमीन (सं), पूर्वोक्त, में : 382 पर उद्धृत. (अनु.), हे मेरी ननद, सैयाँ नहीं आए. आम के पेड़ों पर बौर लगे हैं और टिकोरे तैयार हो रहे हैं. पत्ते ऐसे लटक रहे हैं जैसे कि मतवाले हो गए हों. मेरी चोली में मेरा भरपूर जोबन नहीं समाने का; मैं इसे कैसे छिपाऊँ?

जब ये मास निरस मिलन भए, सुंदर प्रान गवनवा।[8]

नई रे नवेली अलबेली बौराही, उढ़कत उढ़कत चलेली अँगनवा,
खन आँगन खन बाहर ठाड़ी रे, जोहे लागे जोहे लागे सइयाँ के अँगनवा,
जिंही मोरा कहे रामा सइयाँ के अँगनवा, ननदी हो तिंही देबो कंचन कंगनवा।[9]

जँतसार गीत, जिनको स्त्रियाँ जाँता (चक्की) चलाकर अनाज पीसते हुए गाती हैं, रोज़ी कमाने के लिए दूर देस गए हुए पिया के वास्ते उनकी भारी तड़प को व्यक्त करते हैं। एक गीत इस प्रकार है:

बेरि बेरि जाल सइयाँ पुरबि बनिजिया
कइसे कटे दिन रात हो।
गाड़ी जे अटकेला चहल पहल में, बैला अटके गुजरात हो,
ए दुनु नैन बनारस अटके, सइयाँ जहानाबाद हो।
तलवा में चमकेला चाल्ह मछरिया, रनवा में चमके तलवार हो,
सभवा में चमके सइयाँ के पगड़िया, सेजिया पे टिकुली हमार हो।[10]

अब अगले गीत से पहले एक दोहा:

पिया बाटिया जोहत दिन गइले, तोरी खबरिया न अइलो
केसिया अपने गुथाइला, मंगिया सेंदूर भराइला,
पिया के सुरतिया लाइला, जियरा हमार रुढ़ेला
नैना नियरा धर गइलो
बाभन के बेद बोलाइल, पोथिया ओकर खोलवाइल
साँचे सगुन सुनवाइल, पिया नईखे आइल।
जोहन हमार बड़ भइलो
नउवा के चौर बोलाइल, पूरब देस पठाइल
उत्तर ढाई के आवेला, दक्खिन सूरत लगाइल

---

[8] उपरोक्त. (अनु.) हे राम, (मेरे साजन), परदेस जा रहे हैं; मेरा घर मुझे नहीं सुहाता. इस महीने अगर उनसे मिलने की आस टूटी तो मेरा यह सुंदर जीवन समाप्त हो जाएगा.

[9] जी.ए. ग्रियर्सन, शाहिद अमीन (सं), पूर्वोक्त, में : 383 पर उद्धृत. (अनु.) एक नई-नवेली अलबेली, प्रेम में बावरी होकर, अटपट चलते हुए आँगन में पहुँचती है. कभी आँगन में और कभी बाहर खड़ी होती है, और अपने पिया के आने की राह तकती रहती है, तकती रहती है. ऐ मेरी ननद, जो मुझे (हे राम!) मेरे पिया के आने की ख़बर देगा उसको मैं सोने का कंगन दूँगी.

[10] उपरोक्त : 385 देखें, (अनु.) हे मेरे मालिक, अक्सर तुम व्यापार के लिए पूरब चले जाते हो; मेरे दिन और रात भला कैसे कटें? गाड़ी तो कीचड़ में फँस जाती है और बैल गुजरात में अटक जाते हैं. मेरे दो नैना बनारस में अटक गए और सैयाँ जहानाबाद में अटके हुए हैं. जिस तरह ताल में चेल्हवा मछली चमकती है और जिस तरह लड़ाई के मैदान में तलवार चमकती है, उसी तरह सभा में मेरे सैयाँ की पगड़ी चमक रही है और सेज पर मेरी बिंदिया चमकती है.

पच्छिम घरे घरे ढूँढालन।[11]

एक और गीत में पूर्वी गोरखपुर की एक स्त्री गाती है:
अमवा मोजराय गइले, महुआ कचियाई गइले
केकरा के बदबो सनेसवा? आ रे बेदर्दी छोड़ के नोकरिया।[12]

कोल्फ़ की टिप्पणी यूँ है :

भारतीय गीत अक्सर स्त्रियों के दृष्टिकोण को पेश करते हैं और कविगण भी, सूने मकानों में पीछे रह गई स्त्रियों की तड़प को पूरी तरह सामने रखते हुए भी, उनके जीवनसाथियों का अता-पता नहीं बतलाते, बल्कि उनके दूर जाने के कारण तक नहीं बतलाते। इस तरह अपने पति से अलग हो चुकी विरहिणी आरंभिक हिंदी साहित्य समेत समस्त मध्यकालीन साहित्य की सबसे आम नायिकाओं में शामिल हो चुकी हैं।[13]

डी.एच.ए. कोल्फ़ ने दिखाया है कि किसानों में सल्तनत की फ़ौज में भर्ती होने की एक परंपरा रही है। पूर्वी हिंदुस्तान, जिसे स्थानीय लोकभाषा में पूरब कहा जाता था, शेरशाह और जौनपुर की सल्तनतों में 15 वीं और 16 वीं सदियों में किसान सैनिकों की भर्ती का एक अहम इलाक़ा हुआ करता था। भारत में मुग़ल राज के दौरान भी सेना में यही पुरबिया सैनिक थे।[14] मुग़लों ने किसानों में से सैनिक भर्ती किए, ख़ासकर बक्सर के इलाक़े से। आम तौर पर इन सैनिकों को बक्सरिया कहा जाता था। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने जब भारत के एक बड़े भाग पर क़ब्ज़ा कर लिया तो उसने पुरबिया और बक्सरिया किसान सैनिकों पर आधारित एक बड़ी फ़ौज खड़ी की। अपनी पत्नी से पति के अलगाव का कारण अनेक गीतों में नौकरी है, जिससे परंपरागत भारत में मुराद आम तौर पर लंबी दूरी की नौकरी होती थी, जैसी कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में भी थी।[15] दूसरे शब्दों में, ग्रामीण भारत की, और ख़ासकर उत्तर प्रदेश और बिहार की, कल्पना भी कम, मध्यम और अधिक मुद्दत के उन प्रवासी श्रमिकों के

---

[11] उपरोक्त : 386 देखें. (अनु.) पिया, तुम्हारी राह देखते-देखते दिन निकले जा रहे हैं, और तुम्हारी कोई खोज-ख़बर नहीं मिली. रोज़ मैं बाल बनाती हूँ और माँग में सिंदूर डालती हूँ. तुम्हारी सूरत आँखों के सामने लाती हूँ, लेकिन जी उदास रहता है और आँखों से आँसू बहते जाते हैं. बाभन को बुलवाती हूँ और उससे उसकी पोथी खुलवाती हूँ. वह नेक सगुन बतलाता है लेकिन मेरा पिया नहीं आता, जबकि मेरी जवानी चढ़ी जा रही है. मैंने नाई के बेटे को बुलाया और उसे पूरब देस भेजा. वह उत्तर दिशा से घर लौटा, दक्षिण की ओर रुख़ किया और पश्चिम जाकर घर-घर ढूँढ आया.

[12] ह्यूज़ फ्रेज़र (1883), 'फ़ोकलोर फ्रॉम ईस्टर्न गोरखपुर', जर्नल ऑफ़ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल 52 (1) : 5, कलकत्ता, (अनु.) आम के पेड़ों पर बौर आ गए और महुआ के फूल गिर रहे हैं. किसके हाथ मैं संदेशा भेजूँ? ऐ बेदर्दी, छोड़ के नौकरी आ जा.

[15] उपरोक्त.

[13] डी.एच.ए. कोल्फ़, पूर्वोक्त : 74-75.

[14] उपरोक्त : 160.

बिना नहीं की जा सकती जो सेना, व्यापार और कृषि में अपनी सेवा देते थे।[16]

काम या नौकरी की तलाश में किसान बराबर भटकते रहते थे। विरह के गीत इस बात की पुष्टि करते हैं कि भारतीय किसान मौसमी प्रवास करते थे; वे बैठकी के दिनों में काम पाने के लिए बाहर चले जाते थे, तथा अपने दूर स्थित व्यापारी मालिकों के लिए या सेना में सिपाही के काम करते थे। मसलन पुरबियों और बक्सरियों ने सिर्फ़ सल्तनत की या मुग़लों की सेना में ही काम नहीं किया बल्कि ब्रिटिश सेना में भी सेवा के लिए अपने घरों से दूर चले जाते थे। हालाँकि उपनिवेश-पूर्व भारत में नौकरी के लिए किसानों का आना-जाना पूरी तरह से आंतरिक था, फिर भी नौकरी के लिए ऐसे आंतरिक प्रवास के चलते वे उपनिवेश-काल में समंदर पार भी जाने लगे।

कुलीगिरी : प्रवास क़रार-प्रथा के अंतर्गत

जहाँ उपनिवेश काल से पहले किसानों की आवाजाही आंतरिक प्रवास तक सीमित थी, वहीं भारत में ब्रिटिश राज ने विदेश-गमन की नई संभावनाएँ पैदा कीं। ये संभावनाएँ पूरे ब्रिटिश साम्राज्य में दासप्रथा के उन्मूलन के कारण बाग़ान में श्रम की पैदा होने वाली आवश्यकता से उत्पन्न हुईं। बर्तानिया द्वारा 1833 में दासप्रथा के उन्मूलन से पूरे ब्रिटिश साम्राज्य में शक्कर के व्यापार में मंदी आई जिसके कारण एक संसदीय समिति को यह रिपोर्ट देनी पड़ी कि 'जो लोग ब्रिटिश उपनिवेशों में शक्कर के उत्पादन में दिलचस्पी रखते हैं उन सबमें बिना शक भारी चिंता व्याप्त है।'[17] इस कष्ट को सीधे-सीधे मज़दूर पाने की कठिनाइयों से जोड़ा गया: '(शक्कर के) गिरे हुए उत्पादन और उससे पैदा परेशानी का प्रमुख कारण श्रमिकों की अबाध और निरंतर आपूर्ति में प्लांटरों को हो रही भारी कठिनाई है...'[18] वेस्ट इंडीज़ के प्लांटरों को श्रम की आपूर्ति के नए स्रोत ढूँढने के लिए भारत एक मुनासिब स्थान लगा, क्योंकि यहाँ श्रम अपेक्षाकृत सस्ता और भरपूर था। 1834 और 1930 के बीच विभिन्न द्वीपों के औपनिवेशिक बाग़ान में काम करने के लिए भारतवासियों की भर्ती क़रार-प्रथा के द्वारा आयोजित की गई।[19]

मॉरीशस वह पहला उपनिवेश था जिसने 1834 में भारत से गिरमिटिया मज़दूर बुलाए, और फिर 1838 में ब्रिटिश गुयाना तथा 1945 में त्रिनिदाद और जमैका ने यही किया। वेस्ट इंडीज़ के दूसरे छोटे उपनिवेश जिन्होंने भारत से गिरमिटिया मज़दूर बुलाए वे थे 1850 के

---

[16] उपरोक्त. जेम्स नोर्गेट (1861), फ़्रॉम सिपॉय टू सूबेदार, सीताराम द्वारा प्रेषित, पंजाब; मधुकर, उपाध्याय, (1999), क़िस्सा पांडे सीताराम सूबेदार, नई दिल्ली, सारांश प्रकाशन भी देखें. 'जाति के जाने' का डर सिर्फ़ कुछ ऊँची जातियों के हिंदुओं को सताता था और निचली जातियों के, मुस्लिम और आदिवासी प्रवासियों पर यह लागू नहीं होता था. इस तरह इसके महत्त्व की अतिशयोक्ति की गई है. लेकिन (1856) से पहले बंगाल की सेना के अंदर 'बट्टा' (समुद्रपार सेवा भत्ता) बढ़वाने की सौदबाज़ी के लिए इसका महत्त्व होता था.

[17] विलियम एल.एफ़. रशब्रुक (1924) : 5.

[18] उपरोक्त. (1842 और 1848) में गठित दो संसदीय समितियों ने स्पष्ट रूप से मंदी की रिपोर्ट दी.

[19] उपरोक्त : 7.

तालिका-1
1880 तक उपनिवेशों में जाने वाले भारतीयों की संख्या

ब्रिटिश उपनिवेश		
क्रम सं	उपनिवेश	क़रारबंद भारतीय जनसंख्या
1	मॉरीशस	248,000
2	डेमेररा	88,000
3	त्रिनिदाद	51,000
4	जमैका	11,000
5	ग्रेनाडा	1,500
6	सेंट ल्यूशिया	1,000
7	सेंट किट्स	200
8	सेंट विसेंट	2,000
9	नेविस	300
10	नेटाल	25,000
11	फ़िजी	1,400
	योग	**429,400**
अन्य उपनिवेश		
12	रियूनियन (फ्रांसीसी उपनिवेश)	45,00
13	सेयेन (फ्रांसीसी उपनिवेश)	4,300
14	ग्वादलूप (फ्रांसीसी उपनिवेश)	13,500
15	मार्तिनिक (फ्रांसीसी उपनिवेश)	10,000
16	सेंट क्रोइक्स (डच उपनिवेश)	87
17	सूरीनाम (डच उपनिवेश)	4,156
	योग	**77,043**
सभी उपनिवेशों में कुली आबादी का महायोग = 506,433		

दशक में सेंट किट्स, सेंट ल्यूशिया, सेंट विसेंट और ग्रेनाडा; 1860 में नेटाल, 1873 में सूरीनाम और 1879 में फ़िजी। गिरमिटियों के प्रवास के 82 बरसों में इन उपनिवेशों में बारह लाख से अधिक भारतवासी पहुँचे।[20] 1880 से पहले विभिन्न उपनिवेशों में पहुँचने वाले भारतीय मज़दूरों की संख्याएँ तालिका 2.1 में दी गई हैं।[21]

इन आँकड़ों से पता चलता है कि क़रार-प्रथा के तहत औपनिवेशिक प्रवास ने भी उत्तर भारत के गाँवों से पुरुषों, स्त्रियों और नवविवाहित पुरुषों की एक विशाल संख्या को आकर्षित किया। जो नौजवान कभी सल्तनत, मुग़ल राज या ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में जवान और सिपाही बना करते थे, वे अब गन्ने के टापुओं में बिदेसिया और गिरमिटिया बनने लगे। फ़िजी में क़रारबंद प्रवासियों की प्रवृत्ति की छानबीन करते हुए बृज लाल ने जो आँकड़े दिए हैं उनसे इसकी पुष्टि होती है कि फ़िजी के लिए भर्ती किए जाने से पहले ही भावी प्रवासी अपने घर छोड़ चुके होते थे। मिसाल के लिए संयुक्त प्रांत के बस्ती ज़िले में 61.2 प्रतिशत कुँवारे अहीर पुरुष, 75.5 प्रतिशत कुँवारे पुरुष ब्राह्मण और 45.1 प्रतिशत कुँवारे पुरुष चमार अपने गृह जनपद से भिन्न ज़िलों में गिरमिटिया के रूप में दर्ज किए गए। बस्ती में न सिर्फ़ कुँवारे पुरुषों ने बल्कि 62.2 प्रतिशत कुँवारी अहीर, 86.6 प्रतिशत कुँवारी ब्राह्मण और 45.1 प्रतिशत कुँवारी चमार स्त्रियों ने भी अपने गृह जनपद से बाहर ही नाम दर्ज कराए।[22]

क़रारबंद प्रवास खेत मज़दूरों के लिए अनेक सहारों में सिर्फ़ एक सहारा था। आंतरिक प्रवास के बहुत से दूसरे रास्ते भी थे। किसी भी तरह के काम की तलाश में लोग बराबर भटकते रहते थे। ग्रियर्सन ने देखा कि बिहार से काम की तलाश में लोग नेपाल जा रहे थे। उन्होंने पाया कि जब विशाल स्तर पर सार्वजनिक, अर्ध-सार्वजनिक और निजी निर्माण-कार्यों का आरंभ हुआ तो बिहार के ग्रामीण ज़िलों से भारी संख्या में मज़दूर काम के लिए निकल पड़े। जैसा कि आनंद यांग ने दिखाया है, बिहार के सारण ज़िले से हर साल मौसमी तौर पर हज़ारों मज़दूरों के पूर्वी बंगाल और कलकत्ता जाने और फिर खेतिहर कामों के आरंभ होने पर वापस गाँव पलट आने की परंपरा थी।[23] बड़ी संख्या में सारण के लोग गिरमिटिया के रूप में अपने ज़िले से बाहर भर्ती किए गए। इसका कारण यह था कि वे देश के अंदर काम की तलाश में घर छोड़कर निकले और जब काम नहीं मिला तो गिरमिटिया बन गए।

संयुक्त प्रांत और अवध में गिरमिटियों की भर्ती की छानबीन करते हुए पिचर ने देखा कि

---

[20] बृज. वी. लाल (2000) : 4.

[21] मेजर पिचर ऐंड ग्रियर्सन इन्क्वायरी इंटू एमिग्रेशन [आगे से : ग्रियर्सन रिपोर्ट], राजस्व और कृषि [आगे से : रा कृ] एमिग्रेशन, ए प्रोग्स संख्या 9-15, अगस्त 1883.

[22] बृज. वी. लाल (2004) : 142.

[23] आनंद यैंग (1979), *पेज़ेन्ट्स ऑन मूव : अ स्टडी ऑफ़ इंटर्नल माइग्रेशन इन इंडिया,* जर्नल ऑफ़ इंटरडिसिप्लिनरी हिस्ट्री, 10 (1) : 37-58, ग्रीष्म. जो मौसमी प्रवास धान की फ़सल की कटाई के समय में अंतर के कारण होता है, क्योंकि यह बंगाल में बिहार के काफ़ी बाद में कटती है, उसके बारे में आर जी, हेसेल्टाइन, 1981, द डेवलपमेंट ऑफ़ जूट कल्टीवेशन इन बंगाल, 1860-1914, देखें.

ऐसे अनेक नाके थे जहाँ लोग कई कारणों से आते थे और उपनिवेशों में काम करने के लिए अपने नाम दर्ज करा देते थे। पिचर के शब्दों में :

> पूरे साल ज़ाहिरा तौर पर राजमार्गों पर भटकने वालों की एक क़तार लगी रहती थी जो बड़े नगरों में जा पहुँचते थे और कुल के लगभग आधे लोग इस धारा में से भर्ती किए जाते थे। भर्ती होनेवालों में कुछ नगरों को इसी रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है और ये नाका कहे जाते हैं। कानपुर, दिल्ली और लखनऊ ऐसे बड़े नाके हैं; इलाहाबाद, फ़ैज़ाबाद और बनारस अपने तीर्थयात्रियों में से तथा बनारस अपने सदाब्रतों में से अनेक की भर्ती कराते हैं। देसी रजवाड़ों के लोगों के लिए आगरा एक बड़ा नाका था। स्त्रियों के लिए एक प्रिय तीर्थस्थान होने के कारण मथुरा बहुत सी स्त्रियों की भर्ती कराता है।[24]

19वीं सदी में उत्तर भारत में श्रम बाज़ार में तेज़ी आई। श्रमिकों की बेशी और कमी उनकी माँग पर निर्भर होती थी। पिचर ने देखा कि मुरादाबाद तक अवध ऐंड रुहेलखंड रेलवे के निर्माण के कारण कहारों के पूरे के पूरे गाँव बेरोज़गार हो गए जो अपनी रोज़ी पालकी ढोकर कमाते थे। इसी तरह काबुल की जंग के ख़ात्मे से पंजाब में काम के इच्छुक लोगों की बाढ़ आ गई। एक एजेंट ने पिचर को बतलाया कि उपनिवेशों के लिए पंजाब से जितने लोग चाहिए, मिल जाते हैं।[25]

मध्य-19वीं सदी तक उत्तर भारत की बस्तियों, गाँवों और नगरों में क़रार की प्रथा बड़े पैमाने पर प्रचलित थी। संयुक्त प्रांत, बिहार और बंगाल में इसके बारे में समुचित नियम-क़ायदे बनाए गए और विभिन्न ज़िलों में एजेंटों को लाइसेंस जारी किए गए। ग्रियर्सन और पिचर की रिपोर्टों से उत्तर भारत में क़रार प्रथा के बारे में हमें दिलचस्प जानकारी प्राप्त होती है। क़ानूनी तौर पर उत्तर भारत के हर ज़िले में क़ुली भर्ती करने का एक दफ़्तर था जिसका सदर दफ़्तर कलकत्ता में था। एजेंटों को लाइसेंस जारी किए जाते थे और उनमें से बहुत से लोग क़ुली भर्ती कराने के लिए ग़ैर-लाइसेंसी स्त्री-पुरुष सहायक रख लेते थे। स्थानीय स्तर पर ये ग़ैर-लाइसेंसी मातहत अरकाटी (recruiter के लिए भोजपुरी शब्द) कहे जाते थे। क़ुली भर्ती कराने के लिए ये एजेंट अनेक रणनीतियाँ अपनाते थे और उनके काम के तरीक़े अलग-अलग इलाक़ों में अलग-अलग होते थे। पिचर और ग्रियर्सन ने संयुक्त प्रांत और बिहार में पाया कि 'भर्ती का आदर्श ढंग यह था कि एजेंट नगरों और गाँवों में जाते थे और लोगों के नाम उनके घरों पर या पास-पड़ोस में दर्ज करते थे।' लेकिन अनेक एजेंट एक ज़िले में क़ुली पाते और किसी दूसरे ज़िले में उनको नाम दर्ज करते थे।[26] ग्रियर्सन ने देखा कि शाहाबाद (बिहार) में प्रवास इतना लोकप्रिय था कि भावी प्रवासी सब-डिपो में ख़ुद आकर भर्ती होते थे।

परदेस के बाग़ान के लिए मज़दूर जमा करना एजेंटों के लिए आम तौर पर आसान नहीं

---

[24] पिचर रिपोर्ट, रा कृ एमिग्रेशन, ए प्रोग्स संख्या 1-12, फ़रवरी 1883.

[25] वही, अनुच्छेद 65.

[26] वही, अनुच्छेद 12 : 4.

होता था, क्योंकि इसका मतलब था स्थानीय ज़मींदारों का नुक़सान। चूँकि भारत के ग्रामीण जीवन पर ज़मींदारों और कुछ दूसरे ग्रामीणों का वर्चस्व होता था, इसलिए एजेंटों की मुक्त आवाजाही के दौरान उन पर ज़मींदारों के चाकरों के हमले का जोखिम रहता था। इसलिए एजेंटों ने नई रणनीतियाँ अपनाईं और बड़े नगरों की तरफ़ जाने वाले रास्तों पर मँडराने लगे, जहाँ काम की तलाश करनेवाले अक्सर भटकते रहते थे। ये लोग रेलवे स्टेशनों, सरायों और नगर के बाहर स्थित कुओं के आसपास डोलते रहते थे जहाँ यात्री जमा होते थे और स्त्रियों व पुरुषों से पूछते थे कि क्या वे काम की तलाश में हैं। प्रायः उनका पहला सवाल यह होता था: नौकरी लोगे? अगर उनकी दिलचस्पी यह जानने में होती थी कि एजेंट 'कहाँ' और 'किस तरह का' काम देगा, तो वे गिरमिट की शर्तों की व्याख्या करते थे। मेले मज़दूरों की भर्ती के लिए बेहतरीन स्थान होते थे। मिसाल के लिए बिहार में सोनपुर का मेला आम तौर पर एजेंटों के लिए बहुत फ़ायदेमंद होता था।[27]

काम की व्यवस्था और स्थानों की जानकारी

मानवतावादियों और दासताविरोधी संगठनों के सदस्यों का तथा आगे चलकर इतिहासकारों का यह सवाल रहा है कि क्या विभिन्न द्वीपों के गन्ने के खेतों में जो किसान ले जाए गए, उनको उन स्थानों और वहाँ काम की दशाओं का पूरा-पूरा इल्म था। क़ुलियों को धोखे से भर्ती किया जा रहा था और अधिकतर भर्ती करने वाली एजेंसियों द्वारा उनका अपहरण भी किया जाता था।[28] लेकिन विभिन्न सरकारी और ग़ैर-सरकारी रचनाओं में इसके बारीक ब्योरे और प्रमाण प्रकाशित हुए जिनसे संकेत मिलता है कि मध्य-19वीं सदी में गिरमिटिया प्रवास के और गन्ने के टापुओं के बारे में किसान काफ़ी-कुछ जानते थे क्योंकि क़रार-प्रथा के तहत विदेशगमन के दौरान किसानों ने अपनी शब्दावली विकसित कर रखी थी।[29] मिसाल के लिए (recruiter के लिए) अरकटी या अर्कोट्टी शब्द का और मॉरीशस के लिए मिरिच शब्द का प्रयोग उन क़रारबंद मज़दूरों द्वारा किया जाता था जो अपने क़रार की मुद्दत पूरी करके मॉरीशस से वापस आ जाते थे।[30] सन् 1880 में जब मेजर पिचर और जॉर्ज ए ग्रियर्सन क़रार-प्रथा पर किसानों की भावनाओं और सोचों को समझने के लिए उनसे साक्षात्कार ले रहे थे, तब संयुक्त प्रांत और बिहार में ये शब्द काफ़ी प्रचलित थे।[31]

---

[27] ग्रियर्सन रिपोर्ट, अनुच्छेद 71 : 15.

[28] मिसाल के लिए क़रारबंद क़ुली प्रवास पर दासप्रथा विरोधी ब्रिटिश और विदेशी समिति के बयान, *ब्रिटिश ऐंड फ़ॉरेन एंटी-स्लेवरी सोसायटी*, लंदन, 1883 देखें.

[29] यहाँ इस बात को दर्ज करना अहम है कि ग्रामीणों से मेजर पिचर और जार्ज ग्रियर्सन ने जो शब्दावलियाँ दर्ज की थीं वे निश्चित ही एक लंबे काल में विकसित हुई होंगी. इसलिए अगर पिचर और ग्रियर्सन ने 1882 में क़रार-प्रथा के संकेत देने वाले कुछ शब्द सुने तो इसका मतलब यह हुआ कि किसानों की शब्दावलियाँ चार या पाँच दशकों से अधिक समय में बन रही होंगी क्योंकि एक छोटी सी मुद्दत में कोई शब्दावली लोकप्रिय नहीं हो सकती.

[30] पहाड़ी क़ुलियों से संबंधित जाँच समिति की रिपोर्ट, ब्रिटिश पार्लियामेंटरी पेपर्स, सत्र 1 (45), 1841 देखें.

[31] आरंभ-1880+ में प्रवास के मुख्य स्रोत यानि गंगा की वादी के लिए दो अहम समितियाँ गठित की गईं. पश्चिमोत्तर प्रांत में मेजर डी.जी. पिचर से ग्रहण-क्षेत्रों का दौरा करके प्रवास संबंधी भावनाओं पर रिपोर्ट देने को कहा गया. पिचर ने देहातों में जो

दोनों ने पाया कि धारणा के स्तर पर इन मंज़िलों का पहले ही 'किसानीकरण' किया जा चुका था। लगता है कि वरीयता का एक क्रम भी तैयार किया जा चुका था। मिसाल के लिए पिचर ने लिखा है कि संयुक्त प्रांत में लोकभाषा में डमरा या डमरैला कहे जानेवाले डेमेररा पर त्रिनिदाद को वरीयता दी जाती थी जिसे 'चिनिटाट' कहा जाता था। जाने के लिए जमैका को भी ठीक समझा जाता था। 1883 के आरंभ में फ़िजी या नेटाल का ज्ञान कम ही था। इसका कारण यह था कि फ़िजी में प्रवास का आरंभ देर से, 1879 में, हुआ और नेटाल में बहुत से मज़दूर दक्षिण भारत से गए। मॉरीशस, यानि जनभाषा का मिरिच, उत्तर भारत के किसानों में लोकप्रिय था। पिचर ने देखा कि लोग हर उपनिवेश में व्यवस्था की दशाओं, आवाजाही और मज़दूरियों के बारे में काफ़ी जानकारी रखते थे। मिसाल के लिए संक्षिप्त यात्रा, सस्ती वापसी और दिहाड़ी की बजाय माहाना मज़दूरी की अदायगी के चलते प्रवासी मॉरीशस को वरीयता देते थे। लेकिन पिचर ने यह भी देखा कि कुछ क्षेत्रों में मॉरीशस बदनाम हो चुका था। गोरखपुर के एक एजेंट ने कहा कि 'क़ुली कभी-कभी कहते हैं कि वे किसी भी टापू पर जाने के लिए तैयार हैं, मॉरीशस को छोड़कर।' ऐसी भावनाएँ डेमेररा या मॉरीशस के लिए कुछ क्षेत्रों में मगर 'फ़्रांसीसी उपनिवेशों' के लिए हर जगह आम थीं। पिचर की राय में ऐसी भावनाएँ फ़्रांसीसी उपनिवेशों में शायद 'आवारों की धर-पकड़' के पुराने दिनों की यादगार थीं।[32]

पिचर ने देखा कि अनेक शिक्षित भारतवासियों की सोच यह थी कि ऐसे उजाड़ टापुओं को बसाने के लिए ये भर्तियाँ की जा रही थीं जो अब भारत सरकार के नियंत्रण में थीं, और यह कि जो वहाँ गए वे फिर कभी लौटकर नहीं आएँगे।[33] संयुक्त प्रांत में देशी डिप्टी कलेक्टरों और पुलिस इंस्पेक्टरों का साझा विश्वास था कि क़ुलियों को सूअर और गौ का मांस खिलाया जाता है, पहले से एक गंदी सोच के तहत उनको उनकी जाति से वंचित कर दिया जाता है और जबरन ईसाई बनाया जाता है। खुली अदालत में भी क़ुलियों के सामने ऐसी राय रखी गई है।[34]

बिहार में ग्रियर्सन ने प्रवास के बारे में लोगों की तरह-तरह की रायें दर्ज कीं। उन्होंने देखा कि जिन ज़िलों में वापस आए लोग बसे हुए थे वहाँ प्रवास लोकप्रिय था। ग्रियर्सन का झाड़ा हुआ उपदेश क्रेसिट इंडलजेंस सिबी था और प्रवास करने वाला हर क़ुली वापसी पर इसका देवदूत

भी अच्छा-बुरा देखा उसे दर्ज किया. उन्होंने दिल्ली और बनारस के बीच के इलाक़े में, जो कलकत्ता के एजेंटों के लिए भर्ती का सबसे अहम क्षेत्र बनकर उभर रहा था, प्रवास के प्रभाव पर महत्त्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत किए. रहे जी. ए. ग्रियर्सन तो उनको बंगाल से, और ख़ासकर बिहार से, प्रवास के बारे में एक रिपोर्ट देने को कहा गया. ग्रियर्सन कोई साधारण अधिकारी नहीं थे, बल्कि एक विद्वान थे जो अपने नृजातीय और भाषाशास्त्रीय अध्ययनों के कारण अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। इसलिए उनके अध्ययन में काफ़ी सावधानी से सांख्यिकीय सूचनाएँ दी गई थीं और असाधारण दिलचस्पी की भाषाशास्त्रीय सामग्री भी थी. 1880 के दशक में वे गया के कलेक्टर थे जब उन्होंने बिहार के किसान-जीवन पर एक भारी-भरकम अध्ययन पूरा किया था. देखें शाहिद अमीन (सं), *अ कन्साइज़ इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ नॉर्थ इंडियन पेज़ंट लाइफ़* : 30, दिल्ली : मनोहर.

[32] पिचर रिपोर्ट, अनुच्छेद 101 : 32.

[33] उपरोक्त, अनुच्छेद 61 :15.

[34] उपरोक्त, अनुच्छेद 62.

बन जाता था।[35] संयुक्त प्रांत में पिचर की रिपोर्ट यह थी कि अनेक स्थानों पर देसी समुदाय की भावना नकारात्मक थी क्योंकि अनेक लोगों ने इसकी कहानियाँ सुनाईं कि 'क़ुली चमगादड़ की तरह सर झुकाए चलता है या तेल के लिए ज़मीन में गाड़ दिया जाता है।'[36] उपरोक्त बिंब के बारे में बिहार में ग्रियर्सन ने भी कुछ सुना; इसे लोकभाषा में 'मिमिआई का तेल' (यानि कि क़ुली के सर से निकाला गया तेल)[37] कहा जा रहा था। फिर भी ग्रियर्सन ने देखा कि अन्य स्थानों पर लोग औपनिवेशिक प्रवास के तथ्यों से बख़ूबी परिचित थे: 'एक क़ुली पाँच साल के लिए बाहर जाता है; वह अगर वहाँ दस साल रह ले तो वापसी का मुफ़्त टिकट पा जाता है, उसके साथ अच्छा सुलूक होता है, उसकी जाति का सम्मान किया जाता है, और वह अमीर बनकर घर लौटता है।' कुछ ज़िलों में जहाँ वापस आए लोग बसे हुए थे, लोग 'मिमिआई का तेल' वाले क़िस्से में यक़ीन नहीं करते थे और इसे झूठ मानते थे।[38] 'मिमिआई का तेल' वाले क़िस्सों पर उस काल के एक कार्टूनिस्ट ने भी ध्यान दिया था। जॉर्जटाउन में इसीलिए एक चीनी स्कूलमास्टर ने एडवर्ड जेंकिन्स को एक काष्ठचित्र (चित्र 1) प्रस्तुत किया जब वे क़ुली श्रमिकों के हालात पर एक किताब लिखने के लिए ब्रिटिश गुयाना के दौरे पर थे।

चित्र-1

मिमिआई का तेल: गन्ने के एक बाग़ान में जीवन : एक गिरमिटिया मज़दूर की नज़र में

स्रोत: एडवर्ड जेंकिन्स, *द क़ुली : हिज़ राइट्स ऐंड रॉन्ग्स*, पृ.10, लंदन, स्ट्रैहन ऐंड कम्पनी

[35] ग्रियर्सन रिपोर्ट, अनुच्छेद 81 : 18.

[36] पिचर रिपोर्ट, अनुच्छेद 62 : 15.

[37] ग्रियर्सन रिपोर्ट, अनुच्छेद 83 : 19.

[38] ग्रियर्सन रिपोर्ट : 17-18.

जेंकिन्स ने इस कार्टून की व्याख्या यूँ की :

> यह चित्र एक मैनेजर के, ईंट के खंभों पर खड़े मकान का बड़ा ही सटीक चित्रण है। चित्र के निचले भाग में बाएँ हाथ पर अपने मवेशी हाँक रहा एक क़ुली है। दाहिने हाथ पर एक देहाती सिपाही एक दुखी चुटियाधारी को कटघरे में बंद करने के लिए पकड़ रहा है; जैसा कि हम देख सकते हैं, वह ठीक ऊपर के झुंड से बाहर है और उसके हाथ खुले हुए हैं। इससे संकेत मिलता है कि वह क़रार की पाबंदियों से बचना चाहता है और इसलिए वह सज़ा का हक़दार है। उसके ऊपर, चित्र में दाहिनी ओर, एक समूह चीनियों का है, और सीढ़ी की बाईं तरफ़ एक समूह भारतीयों का है, जिनका हाथ बँधा दिखाया गया है जो कि गिरमिट का प्रतीक है। वे जब क़रार के तहत होते हैं तो हमेशा स्वयं को 'बँधे हुए' कहते हैं। सीढ़ियों के दोनों तरफ़ एक चीनी और एक क़ुली हैं जिनकी छातियों से दो ड्राइवर चाक़ू से ख़ून निकाल रहे हैं और इस जीवन-द्रव को बस्ती के लड़के शराब के गिलासों में भर रहे हैं। एक लड़का इन गिलासों को सीढ़ियों के ऊपर एटॉर्नी और मैनेजर तक लेकर जा रहा है जो बरामदे में बाईं तरफ़ बैठे हुए हैं और जो ज़ाहिर है कि नीचे वाले बँधुआ लोगों की क़ीमत पर मोटे हो रहे हैं। एक मोटी पत्नी और बच्चे खिड़कियों से बाहर झाँक रहे हैं। पीछे दीवार में एक दरार के रास्ते इंग्लैंड के ख़ुश-ख़ुर्रम और सेहतमंद मालिकों को दिखाया गया है; दाहिनी तरफ़ पेड़ के नीचे, बाड़ में एक झिर्री के रास्ते उम्रदार चीनी नज़र आ रहे हैं जो अपने बदनसीब रिश्तेदारों का मातम कर रहे हैं। बरामदे के दाहिने कोने में तनख़्वाह की मेज़ है जिस पर मज़दूरियाँ रोकने पर चर्चा करते हुए और उसका इंतिज़ाम कर रहे ओवरसियर बैठे हुए हैं। रसोई की धुआँ देती चिमनी और अपना रातिब खा रहे घोड़े का मक़सद सामने के दृश्य का विपर्यय प्रस्तुत करना है। इस तरह यह क़ुली व्यवस्था के तहत उठ सकनेवाली तकलीफ़ों के भावात्मक और व्यंग्यात्मक पक्ष को चित्रमय ढंग से सामने रखता है।[39]

मिमिआई के तेल वाली अफ़वाह, हो सकता है, कि बाग़ान में नौजवान और तंदुरुस्त मज़दूरों की माँग से पैदा हुई हो। प्लांटरों ने प्रवास की एजेंसियों और भर्ती कराने वालों के लिए प्रवासी श्रमिक की क़द-काठी के बारे में निर्देश जारी कर रखे थे। इसलिए उम्रदार स्त्रियों और पुरुषों के बारे में आपत्तियों तथा नौजवान और तंदुरुस्त प्रवासियों की माँग ने इस अफ़वाह का आधार तैयार किया कि इतना क़ीमती तेल सिर्फ़ जवानों और बच्चों के सरों से निकाला जा सकता है। मिमिआई के तेल वाली अफ़वाहों तथा ग्रियर्सन की कुछ अंतर्दृष्टियों और उनके सांस्कृतिक भाषाशास्त्र को उपन्यासकार अमिताव घोष ने पीछे 1830+ तक ले जाकर उस अजीब+ग़रीब भीड़ वाले जहाज़ पर केंद्रित किया है जो उनके उपन्यास सी ऑफ़ पॉपीज़ (2009) का मंच है। घोष लिखते हैं :

---

[39] एडवर्ड्स जेंकिंस, हिज़ राइट्स ऐंड रॉन्स, 10-13, न्यू यॉर्क. मैंने इस कार्टून को 'मिमियाई का तेल' नाम दिया है, क्योंकि मैं समझता हूँ कि 19वीं सदी के दौरान उत्तर भारत में लोगों ने जिस प्रक्रिया की कल्पना की वह वही थी जिसको बाग़ान का जीवन दर्शाने के लिए जेंकिंस ने प्रस्तुत किया है. इस चित्र को एलन. एच. एडमसन (1972), येल युनिवर्सिटी प्रेस में मुखचित्र के रूप में प्रकाशित, *शुगर विदाउट स्लेव : द पॉलिटिकल इकॉनमी ऑफ़ ब्रिटिश गुयाना*, किया गया है.

अफ़वाहों में सबसे डरावनी अफ़वाह इस सवाल पर टिकी हुई थी कि गोरे भला बुद्धिमान, जानकार और अनुभवों से समृद्ध लोगों के बजाय सिर्फ़ जवानों और बच्चों की भर्ती पर क्यों ज़ोर दे रहे थे: इसका कारण यह था कि वे एक ऐसे तेल के तलबगार थे जो सिर्फ़ इंसानों के दिमाग़ में पाया जाता है – यानि कि बहुत पसंद किया जाने वाला मिमिआई का तेल जिसके बारे में कहा जा रहा था कि यह सबसे अधिक उन लोगों के सरों में पाया जाता है जो अभी हाल में बालिग़ हुए हों। इस पदार्थ को पाने का ढंग यह था कि शिकारों को एड़ी से बाँधकर उलटा लटका दिया जाए और उनकी खोपड़ियों में छोटे-छोटे सूराख़ कर दिए जाएँ; इस ढंग से तेल धीरे-धीरे रिसकर एक तसले में जमा हो जाता है।[40] (पृ.340)

गँवई बातचीत में प्रवास की 'हानि' एक और ढंग से भी सामने आती थी। मिसाल के लिए, ग्रियर्सन ने देहातों में यह बात सुनी थी कि 'परिवार में झगड़े के बाद अगर किसी का बेटा या भाई लापता हो जाए और फिर उसके बारे में कुछ सुनने को न मिले तो फ़ौरन यह नतीजा निकाल लिया जाता है कि वह 'टापू' पर चला गया है और फिर उनकी कोई फ़िक्र नहीं की जाती।' ग्रियर्सन कहते हैं कि 'इस तरह से उपनिवेशों को एक ऐसा कालकोठरी माना जाता है कि वहाँ जाने वाला हर शख़्स खो जाता है, और इसलिए वे ऐसी जगहों के रूप में बदनाम हो चुके हैं जहाँ एक बार कोई शख़्स गया कि उसके बारे में कुछ जानकारी मिलने की उम्मीद दस आने में एक आना ही रहती है।'[41] ग्रियर्सन ने प्रवासियों और उनके भारत में रह रहे रिश्तेदारों के बीच भारी पत्र-व्यवहार देखा, लेकिन अजीब बात यह है कि उन्होंने ऐसे पत्रों के नमूने पेश नहीं किए।

बाप-दादा की ज़मीन से जज़्बाती लगाव और पारिवारिक रिश्ते अनेकों बार प्रवास में बाधक बन जाते थे। कुछ लोगों ने ग्रियर्सन को बतलाया कि 'जन्मभूमि' को छोड़ना बहुत मुश्किल होता है, लेकिन उन्होंने अपने गाँवों में जाति-प्रथा के दमघोंटू नियमों के संदर्भ में प्रवास के सकारात्मक पहलुओं का वर्णन भी किया। इस तरह उन्होंने ग्रियर्सन के सामने इस बात को स्वीकार किया कि 'जहाज़ के डेक पर एक शख़्स कुछ भी खा-पी सकता है क्योंकि जहाज़ तो जगन्नाथ के मंदिर समान होता है जहाँ जात-पात की पाबंदियाँ नहीं होतीं।'[42] फिर भी, जैसा कि ग्रियर्सन ने गया में देखा, कुछ मुआमलों में 'जो लोग नहीं जानते हैं, वे क़ुलियों को गाली देते थे कि वे देश छोड़ चले गए, और उन्होंने मिमिआई का तेल वाली कहानी भी दोहराई।' यहाँ भी ग्रियर्सन ने देखा कि एक आम विश्वास यह था कि 'उपनिवेशों में क़ुलियों को गौमांस खिलाया जाता और ईसाई बना लिया जाता है, और यह भी कि उनको फिर वापस लौटने नहीं दिया जाएगा।'[43]

अपनी पूरी छानबीन के दौरान ग्रियर्सन ने प्रवास पर मुल्की लोगों की आपत्तियों को भी सुना। जो पहली आपत्ति उन्होंने सुनी वह लंबी मुद्दत के क़रार और घर से दूरी के बारे में थी।

---

[40] *अमिताव घोष (2009), सी.ऑफ़ पॅपीज़* : 340.

[41] ग्रियर्सन रिपोर्ट, अनुच्छेद 82 : 18.

[42] उपरोक्त : 19.

[43] उपरोक्त, अनुच्छेद 83.

लोग जब उपनिवेशों में पहुँच जाते थे तो कई दफ़े वे भारत में अपने परिवारों से रिश्ते जारी नहीं रख पाते थे। एक और आपत्ति जात-पाँत में हस्तक्षेप को लेकर होती थी। लोगों को जबरन ईसाई बनाए जाने का डर लगा रहता था। पिचर और ग्रियर्सन से कुछ लोगों ने उपनिवेशों में धार्मिक घृणा के चलते उनके उपासना के ढंग को हतोत्साहित किए जाने की शिकायत भी की, और भारत छोड़नेवालों की तरफ़ से खबरें कम मिलने के कारण वे लोग इस पूरी व्यवस्था को धोखाधड़ी समझते थे।[44]

किसी भरोसेमंद डाक-व्यवस्था का अभाव ऐसे संदेहों और नकारात्मक सोच को बढ़ावा देता था। लोगों ने ग्रियर्सन से शिकायत की कि पीछे 'मुलुक' में दोस्तों-यारों को प्रवासियों की 'याद दिलाने वाली' कोई चीज़ नहीं थी। डुमराँव राज के प्रबंधक राय जयप्रकाश बहादुर की शिकायत यूँ थी :

> जब एक इंसान बाहर जाता है तो उसके दोस्तों-यारों को कभी पता नहीं रहता कि वे फिर उसको कब देखेंगे। उपनिवेशों और भारत के बीच संचार लगभग नहीं के बराबर है। चिट्ठियाँ आती हैं, लेकिन उनकी कम संख्या ही किसी गाँव में क़ुलियों की उस भारी संख्या का पता देती है जिनके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती।[45]

वापस लौटे कुछ प्रवासियों ने ग्रियर्सन को बतलाया कि वे तो चिट्ठी भेजते रहते थे पर कभी जवाब नहीं पाते थे क्योंकि भारत में उनके परिजन और मित्र उनके पते नहीं जानते थे, और न लौटनेवाले क़ुलियों के यार-दोस्त कहते थे कि उनको तो जानेवालों की कोई ख़बर ही नहीं मिल रही थी।[46] उपनिवेशों से, सीमित संख्या में सही, क़रारबंद मज़दूर निश्चित ही चिट्ठियाँ और रक़में भेजते रहते थे। (तालिका 2 और 3 देखें।)

ग्रियर्सन ने 13 जनवरी को अपनी डायरी में लिखा कि 'दो साल पहले एक सोनार मॉरीशस से वापस लौटा और उसने मीर कुंगरा को बतलाया कि उनका बेटा ज़िंदा था और ख़ैरियत से था। मीर ने फिर उसको एक रजिस्टर्ड पत्र भेजा लेकिन यह बिन-बँटे पत्रों के दफ़्तर से वापस आ गया। लोगों ने उनसे कहा कि वे ख़त तो भेज रहे हैं पर यह अपनी मंजिल पर पहुँचेगा नहीं, क्योंकि ऐसे ख़त कभी नहीं पहुँचते। मीर को उनकी बात पर यक़ीन नहीं आया, पर पता यही चला कि उनकी बात सही थी।'[47] मैंने फ़िजी के बा ज़िले में सिराजुद्दीन नाम के एक गिरमिटिया का ऐसा ही एक बे-बँटा पत्र देखा जो कैंपबेलपुर (पंजाब) से गए हुए थे। सिराजुद्दीन का यह खोया हुआ पत्र चित्र 2 में दिया गया है।

---

[44] पिचर रिपोर्ट, अनुच्छेद 82-85 : 37.

[45] ग्रियर्सन रिपोर्ट, 9 जनवरी की डायरी : 42.

[46] उपरोक्त.

[47] उपरोक्त.

तालिका-2

उपनिवेशों से आए हुए पत्रों

		1873	1874	1875	1876	1877	1878	1879	1880	1881	1882
मॉरीशस	248000										
डेमेररा	88000		24	34	35	53	95	335	509	546	702
त्रिनिदाद	51000										
जमैका	11000										
ग्रेनाडा	1500										
सेंट ल्यूशिया	1000										
सेंट विसेंट	2000										
सूरीनाम	4156							2		5	5
नेटाल	25000									2	22
फ़िजी	1400										

स्रोत: ग्रियर्सन रिपोर्ट, अनुच्छेद 155, पृ. 37 : ख़ाली स्थानों के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

तालिका-3

प्रवासियों द्वारा भेजी गई रक़में

उपनिवेश का नाम	1873 और 1882 के बीच भेजी गई मोटा-मोटी रक़म जिसे कलकत्ता स्थित एजेंट के ज़रिए भारतीय रुपयों में अदा किया गया।	1882 में भेजी गई मोटा-मोटी रक़म जिसे कलकत्ता स्थित एजेंट के ज़रिए भारतीय रुपयों में अदा किया गया	प्रत्येक 1,000 कुलियों पर भेजी गई मोटा- मोटी रक़म का अनुपात
मॉरीशस	38,541	13,536	54.5
डेमेररा	39,656	10,211	116
त्रिनिदाद	27,380	11,905	292
नेटाल	8,217	3,348	134
सूरीनाम	1,540	1,016	254

स्रोत: ग्रियर्सन रिपोर्ट, अनुच्छेद 155, पृ. 38

चित्र-2

पते के ख़ाने में दो असामान्य प्रविष्टियाँ

10293/14
54361
Writer:
Surajadin 54361
Campbellpore
Punjab
10293/14
Father's name.
Occupation -
Caste -
Pargana -
Thanna -
Zilla -
India.
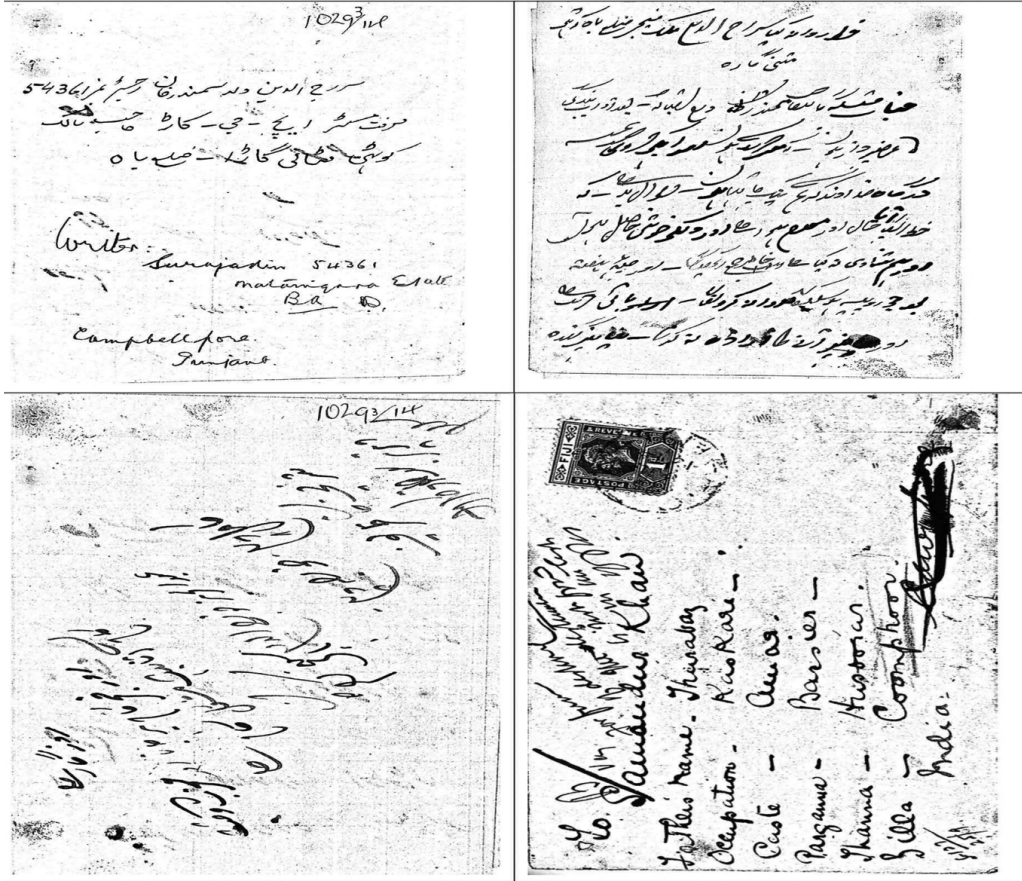
टिप्पणी: गिरमिटिया लोगों ने एक अर्ज़ी भी दी थी कि डाकख़ाने में एक भारतीय नियुक्त किया जाए जो पोस्टकार्डों पर सही-सही पते लिख दे।[48] भारत लौटने से पहले रामचंद्र राव ने, जो फ़िजी में एक गिरमिटिया थे और 1920 व 1930 के दौरान अवध के एक मशहूर किसान नेता थे, बा ज़िला के गिरमिटियों की तरफ़ से डाकख़ाने में हिंदोस्तानी जाननेवाले किसी क्लर्क की नियुक्ति के बारे में निम्नलिखित प्रार्थनापत्र दिया था।[49]

[48] कोलोनियल सेक्रेटरी ऑफ़िस मिनट पेपर्स [आगे से : सीएसओएमपी], 10293/1914, फ़िजी राष्ट्रीय अभिलेखागार [आगे से: फ़ि रा].

[49] सीएसओएमपी, 10293/1914, फ़ि रा. इस पत्र में लिखनेवाले का नाम नहीं दिया गया है लेकिन पत्र में लिखावट वही है जो (भारत में बाबा रामचंद्र के नाम से मशहूर) रामचंद्र राव की हस्तलिखित पांडुलिपि की है. वे इस पत्र पर हस्ताक्षर करने वालों में से थे, और इससे पुष्टि होती है कि यह पत्र उनका ही लिखा हुआ था.

चित्र-3
डाकख़ाने में एक हिंदोस्तानी जाननेवाले दोभाषिए की नियुक्ति के लिए भारतीय क़रारबंद मज़दूरों की अर्ज़ी

10293/14

हिओनेबल
दि कोलोनियल सेक्रेटरी
सुवा फीजी
गरीबपरवर सलामत हमलोग जिलाबा-के हिंदुस्तानि
योंका सरकार से अर्जी है कि ये बा जिले में हमलोग बहुत
हिंदुस्तानी आदमी हैं और हमलोगों को चिठीपार-
सल मनीआर्डर भेजने में बहुत तकलीफ होती है
बा जिले का पोस्ट हापिस मिस्टर मार्क साहेब
के तालुक है कोई छै महीने से हमलोगों को हिंदु
स्तान इंडिआ चिठी पारसल मनीआर्डर भेजने
का बहुत आराम रहा किंवके पोस्ट हापिस में मार्क
साहेब ने एक अंग्रेजी हिंदी पढ़ाहुवा इंडियन
आदमी साहेब के साथ रखा रहा लेकिन अब फिर
मार्क साहेब खाली एक साहेब ही को रखेंगे और
इंडिअन आदमी को पोस्ट हपिस से निकाल दिआ
अब फिर हमलोगों को बहुत संकट हुवा
एक तो ओ साहेब पोस्ट में है वह हिंदुस्तानी
बात एक भी नहीं जानता हमलोग जिला थाना

10293/14

कुछ बताते तो वो कुछ और ही लिखता है इस
बजे से और हमलोगों की मुलुक से चिठी
आती है तो इसकी उसको उसकी इसको ऐसी
गड़बड़ होती है हमलोगों को बिना पोस्ट में एक
हिंदुस्तानी आदमी रहे बिना बहुत ही तकलीफ है
और ये जिला बहुत भारी है इसमें फ्रीमेन और
गिरमिट वाले आदमी बहुत हैं तो सरकार से
हमलोगों का अर्जी है कि सरकार मार्क साहेब
को जैसे से पहिले [illegible] उस आदमी को फिर
पोस्ट हापिस में रखें या सरकार कोई आदमी
पोस्ट में कायम करें जिससे कि हमलोगों को
चिठी पारसल मनीआर्डर जाने आने का
आराम हो जाय जब से मि० मार्क साहेब ने
पोस्ट में आदमी रखा रहा तब से हमलोगों को
पोस्ट में बहुत आराम रहा लेकिन अब खाली
साहेब के रहने से बहुत गोलमाल है तो सरकार से
हमलोगों की अर्जी है कि मिस्टर मार्क साहेब को बोलकर

दी ऑनरबल
दी कोलोनियल सेक्रेटरी
सूवा, फ़िजी
हम बा ज़िले के हिंदोस्तानी आपसे यह प्रार्थना करते हैं कि यहाँ हमारे लोगों की एक बड़ी तादाद रहती है। हम अपने घर आसानी से ख़त, पार्सल और मनीऑर्डर नहीं भेज पाते।
श्री मार्क्स स्थानीय डाकख़ाने के इंचार्ज हैं और दो लोग, एक युरोप का और एक भारत का, उनके सहायक हैं। भारत वाला यहाँ छ: माह रहा और उस दौर में हमें डाक भेजने में किसी भी तरह की कोई परेशानी नहीं हुई, पर अब सिर्फ़ युरोप वाला रह गया है और भारत वाला कहीं और भेज दिया गया है। युरोप वाला हिंदोस्तानी नहीं समझ पाता। हम ज़िले और थाने के नाम बोलते हैं तो वह कुछ और लिख देता है; इस तरह हमें घर को डाक वग़ैरह भेजने में भारी परेशानी हो रही है; एक हिंदोस्तानी दोभाषिए के न होने से हम बहुत कष्ट उठा रहे हैं। यह एक बड़ा ज़िला है जहाँ भारी तादाद में आज़ाद और क़रारबंद भारतीय रह रहे हैं। इन हालात में हम गुज़ारिश करते हैं कि सरकार श्री मान को हमारी शिकायतों के निबटारे के लिए ज़रूरी क़दम उठाने की हिदायत दे या सरकारी पोस्ट ऑफ़िस बनाए। जब तक एक हिंदोस्तानी दोभाषिया रहा, हमें कोई कष्ट नहीं हुआ, पर उसके न होने पर भारी असंतोष फैला हुआ है।
आपकी कृपा के लिए हम हमेशा आपके आभारी रहेंगे।

जनाबे-आला,
हम हैं आपके
अत्यंत आज्ञाकारी सेवक,
बा के 57 भारतीय
तर्जुमा
हिम्मत.....
1 दिसंबर, 1914

20वीं सदी के आरम्भ में उपन्यासकार मन्नन द्विवेदी गज़पुरी ने अपनी रचना रामलाल में, जिन लोगों के परिजन बाहर जा चुके हैं उनके लिए, पत्रों और डाक-व्यवस्था की अहमियत पर रोशनी डालते हैं।

आज बुधवार है। प्रवासियों के माता-पिता और पत्नियाँ डाकिये की राह देख रहे हैं। लाल पगड़ी, एड़ियों में पट्टा और कंधे से चमड़े का थैला लटकता हुआ। यह कोई मामूली थैला नहीं है। यह लोगों के सुखों और दुखों का ख़ज़ाना है। यही (थैला) तो है जो रंगून, कनाडा, नेटाल और मॉरीशस जैसे दूरदराज़ के मुल्कों में ग़रीबों के पसीने की कमाई लेकर आता है।[50]

[50] मन्नन द्विवेदी गज़पुरी (1917), रामलाल: ग्रामीण जीवन का एक सामाजिक उपन्यास, पृ. 26-27, प्रयाग. मूल हिंदी पाठ: ‘आज बुध है. परदेसियों के माता-पिता और पत्नी चिट्ठीरसा साहब का रास्ता देख रहे हैं. सर पर लाल पगड़ी, पैर में पट्टी, कंधे पर चमड़े का बैग लटक रहा है. यह बैग नहीं है, यह लोगों की आशा और निराशाओं का ख़ज़ाना है. दूर देश रंगून, कनाडा,

चित्र-4

नेटाल में सुल्तानपुर के एक गिरमिटिया मजदूर की उर्दू में लिखी गई अर्ज़ी, भारत में अपने परिवार तक पैसा पहुँचने की पुष्टि की माँग करते हुए

Copies of Roll sent to Agent Calcutta
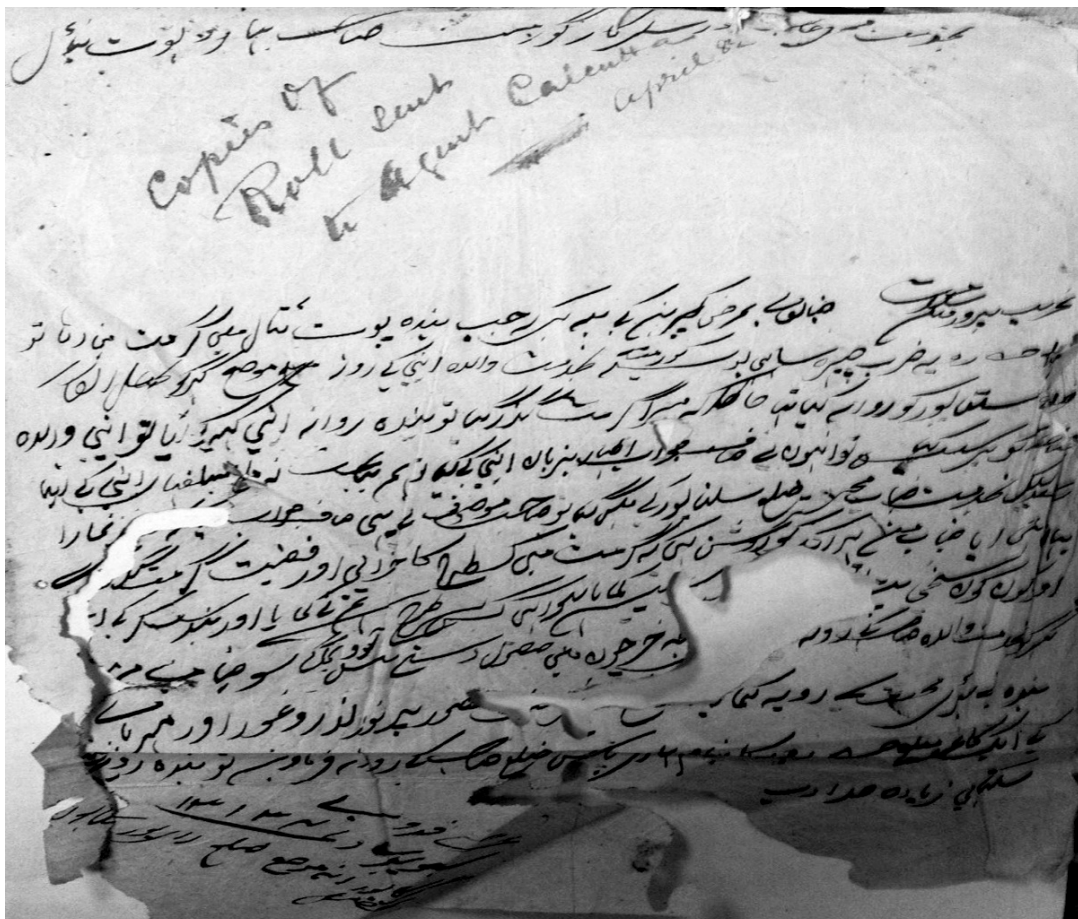
परदेस के बाग़ान से क़रारबंद मज़दूरों द्वारा भेजी गई रक़मों के बारे में गज़पुरी के उपन्यास की सच्चाई सरकारी डाक-व्यवस्थाओं के ज़रिए मज़दूरों द्वारा भेजे गए बहुत से दूसरे पत्रों से जानी जा सकती है। 1880 में सुल्तानपुर (संयुक्त प्रांत) से डरबन (नेटाल) गए एक भारतीय गिरमिटिया मज़दूर, नामी सिव परसाद, ने 50 पाउंड भेजे और कलकत्ता में प्रवासियों के संरक्षक और प्रवास के एजेंट ने उसकी रसीद भी दी। मज़दूर ने एक पत्र भेजकर भारत स्थित अपने परिवार से रक़म मिलने की पुष्टि करनी चाही पर वह तो दो साल बाद भी नहीं पहुँचा

नटाल और मॉरीशस में गरीबों के रक्त के कमाए हुए रुपये भी इसी में आते हैं'. इस उद्धरण और गोरखपुर के चौरी-चौरा में और आसपास के गाँवों में भेजी गई रक़मों, मनीऑर्डरों और पोस्टकार्डों की विवेचना के लिए देखें, शाहिद अमीन, *इवेंट, मेटॉफर, मेमोरी, चौरी-चौरा,* 1922-1992, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली : 36-37.

चित्र-5
नेटाल बैंक की एक हुंडी के बारे में काली प्रसाद का एक नोट
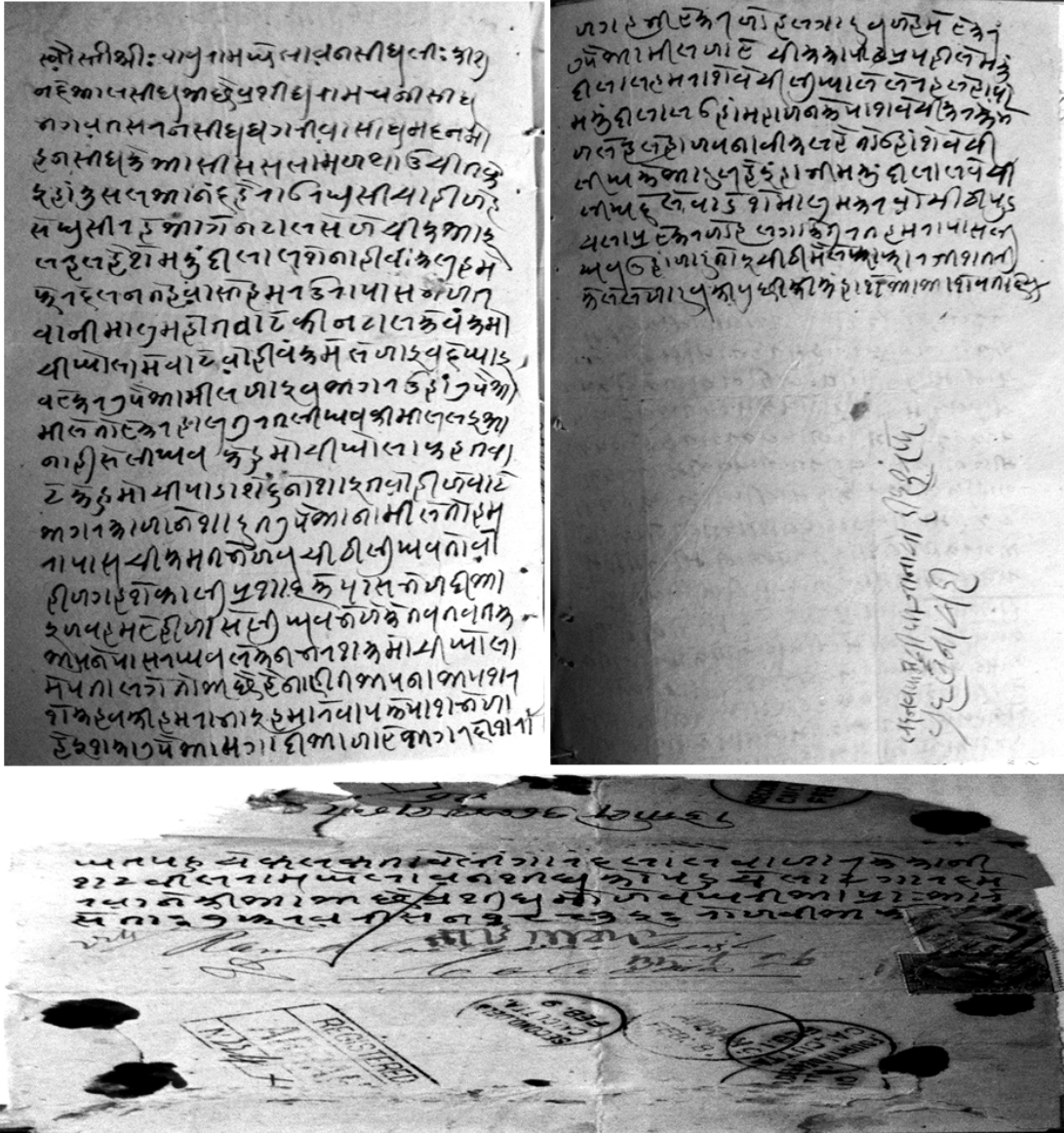
था। सिव परसाद के पत्र की प्रति चित्र 4 में दी गई है[51] :

एक और मिसाल नेटाल से काली प्रसाद के लिखे हुए एक नोट की है। उन्होंने नेटाल बैंक की 10 पाउंड की एक हुंडी आरा (बिहार) के अछैबर सिंह को भेजी थी जिसने उसे मुकुंद लाल को बेच दिया था। लेकिन मुकुंद लाल उसे भुना नहीं सका और उसे वापस अछैबर सिंह को बेच दिया। अछैबर सिंह ने फिर कलकत्ता में राम खेलावन को पत्र लिखकर पूछा कि क्या वह इसे भुना सकता है और पैसा उसे (अछैबर सिंह को) भेज सकता है, या फिर उसे काली परसाद को वापस नेटाल भेज सकता है। देसी भाषा का यह नोट चित्र 5 में दिया गया है।[52]

ये चिट्ठियाँ और रक़में इस बात की पुष्टि करती हैं कि एशिया, प्रशांत और कैरीबियन द्वीपों के गन्ना बाग़ान में काम कर रहे भारतीय गिरमिटिया मज़दूर भारत में अपने घरवालों के संपर्क में रहते थे। उनके जीवन के लिए ये रक़में भारी सहारा और उम्मीद का ज़रिया थीं। उत्तर भारत के किसान के रोज़मर्रा के जीवन पर इस समंदरपारी प्रवास का असर इतना गहरा था कि संयुक्त प्रांत के मशहूरे-ज़माना उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद तक ने मिरिच या डमरा गए लोगों के ख़त पाने की इस चिंता पर अपनी बात कही :

> गोबर ने पूछा, 'दादा को क्या हुआ अम्माँ?' … बोली, 'कुछ नहीं बेटा, ज़रा सा सर में दर्द है। चलो कपड़े उतारो, मुँह धो लो। कहाँ थे तुम इतने दिनों तक? और इस तरह कोई घर से भागता है! और कभी एक चिट्ठी नहीं लिक्खी! … कोई कहता था मिरिच भाग गया, कोई डमरा टापू बताता था। सुन-सुनकर जान सूखी जाती थी। कहाँ रहे इतने दिन?' गोबर ने शर्माते हुए कहा, 'कहीं दूर नहीं गया था अम्माँ; यहीं लखनऊ में तो था।'[53]

वापस आने वाले लोग और प्रवास का तंत्र

क़रारबंद प्रवास उत्तर भारत में वापस लौटने वाले उन लोगों के कारण एक सुपरिचित प्रवृत्ति बन गया जो अपने गाँव के लोगों को इस व्यवस्था, उपनिवेशों में काम के हालात वग़ैरह के क़िस्से सुनाया करते थे। वैसे तो वापस लौटने वालों की संख्या बहुत थोड़ी थी, पर ब्रिटिश उपनिवेशों में हालत फ़्रांसीसी उपनिवेशों से बेहतर थी। तालिका 4 से 1883 में यह काम शुरू होने तक कलकत्ता से विभिन्न उपनिवेशों में जानेवालों की और उन उपनिवेशों से लौटनेवालों की कुल संख्या का पता चलता है :

[51] एमिग्रेशन एजेंट रेमिटन्सेज़ फ़्रॉम नेटाल (1881-1884), इंडियन एमीग्रेशन [आगे से : आई आई], बी 1/8, नेटाल आर्काइव्स डिपो [आगे से : ने आ], पीटर मारिट्ज़बर्ग.

[52] उपरोक्त, आय. आय. बी 1/8, ने आ.

[53] प्रेमचंद (1936), *गोदान*, प्रयाग, पुनर्मुद्रण : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008 : 212 देखें.

तालिका-4

क़रार-प्रथा : शुरू से 1883 तक उपनिवेशों से कलकत्ता आने और वापस जाने वाले[54]

उपनिवेश	वहाँ गए	वहाँ से वापस आए
मॉरीशस	232.802	80,007
डेमेररा	126,656	15,727
त्रिनिदाद	66,769	7,190
जमैका	21,434	5,188
ग्रेनाडा	3,220	214
सेंट ल्यूशिया	2,534	162
सेंट किट्स	361	—
सेंट विसेंट	2,275	680
नेविस	342	—
नेटाल	14,214	517
फ़िजी	1,420	—
सेंट क्रोइक्स	312	250
रीयूनियन	8,115	985
सूरीनाम	6,792	708
ग्वादलूप	13,854	169
कायेन	1,427	—
मार्तिनिक	962	46
योग	**503,489**	**111,843**

पिचर और ग्रियर्सन की छानबीन ने उपनिवेशों में काम के हालात के बारे में उत्तर भारत के ग्रामीणों के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों नज़रियों के होने के संकेत छोड़े हैं। मिसाल के लिए 15 मार्च, 1882 को पिचर ने अपनी डायरी में लिखा कि कैंप ब्यूकस में उन्होंने प्रागसिंह का इंटरव्यू लिया और उनको प्रवास से काफ़ी-कुछ परिचित पाया। प्रागसिंह ने कहा कि केवल अज्ञात का डर ही लोगों को इस यात्रा से दूर रखता था। इसका कारण यह समझ था कि प्रवास करने वाले लोग 'बेधरम' हो जाते थे, इसलिए कि जहाज़ के डेक पर उनको एक ही थाल में दूसरी जातियों के लोगों के साथ कुछ खाने पर मजबूर किया जाता था।

यह भी कि उपनिवेशों में पहुँचने के बाद उनको जबरन ईसाई बनाया जाता था।[55] पिचर की डायरी के कुछ और अंश नीचे दिए जा रहे हैं :

[54] ग्रियर्सन रिपोर्ट, परिशिष्ट : 10.

[55] पिचर डायरी : 66.

> 16 मार्च – दोपहर में आदमपुर के गंगादीन मिश्र, जो कि डेमेररा से लौटे हुए प्रवासी हैं, मुझसे मिलने और अपनी कहानी सुनाने आए... अपनी यात्रा का अजीब सा बयान किया: कि कैसे वे सिर्फ़ काला पानी नहीं बल्कि सुफ़ैत, लाल, नीला और हरा पानी के पार भी गए। सेंट हेलेना का और समंदरी तूफ़ान के दौरान क़ुलियों में फैली दहशत का ज़िक्र भी किया। डेक पर मिले अच्छे और भरपूर भोजन का भारी गुणगान किया। बार्बिस में बड़े ख़ुश थे लेकिन किसी औरत को लेकर झंझट में फँस गए जो 250 रुपये लेकर चंपत हो गई।
> 30 मार्च – पंजीकरण के बारे में... एजेंटों के कारिंदों का इंटरव्यू किया। मुख्य शिकायत मजिस्ट्रेट द्वारा शब्द 'काला पानी' के इस्तेमाल के बारे में थी। क़ुली जब मजिस्ट्रेट साहब को काला पानी की बात करते सुनता है तो ख़ुद से कहता है – 'क्या! हमने क्या कसूर किया कि हमको काला पानी सुनाते हैं?' तब वह भाग जाता है।
> 23 दिसंबर, 1882 – वापस आए प्रवासी छेदी ने डेमेररा के बारे में उतने ही उम्दा शब्दों में बात की। छेदी का कहना था कि डेमेररा में औरत की कमी अकेली समस्या थी.... बोला कि वह ख़ुशक़िस्मत रहा कि सफ़र से पहले जब वह डिपो में था तो एक मुसलमान औरत मिल गई जिससे उसने सगाई यानि कि कामचलाऊ बेक़ायदा शादी कर ली।
> 6 जनवरी, 1883 – मॉरीशस से लौटे हुए क़ुली नन्हकू से भी मिला... वहाँ 12 साल रहा; मॉरीशस दुनिया की सबसे सुंदर जगह; लेकिन औरतों की कमी तो है। अगर कोई कहे कि उसे ईसाई बनाने की कोशिश की गई तो (भारी ज़ोर देकर) झूठा है। वहाँ बहुत सारे ('ढेरों' के लिए क्रियोल शब्द का प्रयोग) पादरी हैं, यानि कि हिंदुओं के लिए पुजारी हैं। बहुत सारे भगत भी हैं।

ग्रियर्सन कहते हैं कि छड़े मर्दों का प्रवास समुद्रपारीय यात्रा का एक बड़ा दोष है। लेकिन साथ ही साथ वे यह भी कहते हैं कि वापस आने वालों ने किस तरह साथी ग्रामीणों को बाग़ान के लिए भेजने में मदद पहुँचाई। वे बिहार के शाहाबाद ज़िले के एक राजपूत परिवार की मिसाल पेश करते हैं जिसमें मॉरीशस से लौटे हुए दो राजपूतों, यानि कि अजोध्या सिंह और स्वरिका सिंह, के साथ पूरा परिवार बाहर चला गया।[56] मरीना कार्टर और क्रिस्पिन बेट्स ने अपनी रचनाओं में इसका ज़िक्र किया है कि प्रवास की प्रक्रिया में ऐसे तंत्र अहम भूमिका निभाते थे।[57] मरीना कार्टर ने उपनिवेशों में प्रवासियों तथा उनके रिश्तेदारों या गाँव वालों के बीच एक जीवंत कड़ी के रूप में वापस लौटने वालों की भूमिका पर ज़ोर दिया है। कार्टर ने इसे रामास्वामी के हवाले से, जिनके पिता मेकेन (मक्खन) 1843 में मॉरीशस चले गए थे, दिखाया है। वापस लौटने वाले लोग अनेक अवसरों पर रामास्वामी से मिलने आते थे और उनके पिता के भेजे हुए पैसे और संदेश लाकर देते थे। रामास्वामी से संपर्क

---

[56] ग्रियर्सन रिपोर्ट, अनुच्छेद 143 : 33.

[57] मरीना कार्टर (1995), सर्वेंट, सरदार्स ऐंड सेटलर्स, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली; क्रिस्पिन बेट्स, और मेरीना, कार्टर (2012), *ऐंसलवेड लाइफ़, ऐंसलविंग लेबल्स : ए न्यू एप्रोच टू द कोलोनियल इंडियन लेबर डायस्पोरा*, सुकन्या बनर्जी, एम्स मैकग्विनीज़ और स्टीवन सी मैक-के द्वारा संपादित, न्यू रुट्स फ़ॉर डायस्पोरा स्टडीज़, इंडियाना, इंडियाना युनिवर्सिटी प्रेस में संकलित.

करने वालों की तरह वापस आनेवालों की इन गतिविधियों के चलते नए प्रवासियों को प्रवास का एक और भी स्पष्ट उद्देश्य प्राप्त होता था, और क़रारबंद भर्ती के औपचारिक ढाँचों के अंदर प्रवास की एक अनौपचारिक, सम्पर्क कड़ी, जैसा की कांगनी प्रथा में था, कारगर ढंग से काम करने लगती थी।[58]

पुरुष-सत्ता के और शाश्वत बंधनों से मुक्ति

प्रवासी स्त्रियाँ क़रारबंद प्रवास को संभवत: पुरुष-सत्ता के दमन से बाहर निकलने का एक रास्ता समझती थीं। क़रार-प्रथा के तहत स्त्रियों के प्रवास की इतिहासकारों ने तरह-तरह से व्याख्याएँ की हैं। मिसाल के लिए पी.सी. एमर का विश्वास था कि क़रार स्त्रियों के लिए 'अपने आपको भारत की अनुदार, प्रतिबंधक और बहुत ही ऊँच-नीच से भरी समाज-व्यवस्था से मुक्त करने' का एक रास्ता था। इस स्थिति में, जैसा कि रोडा रेडक का तर्क था, बाग़ान का परिवेश स्त्रियों को उनकी अपनी पसंद का जीवन जीने का एक अवसर प्रदान करता था। उनकी राय में, 'स्त्रियाँ अब अपनी पसंद से जी सकती थीं, एक पति छोड़कर दूसरे को अपना सकती थीं, और एक ही समय में एक से अधिक पुरुषों से संबंध रख सकती थीं।'[59] इनके विपरीत बील का तर्क है कि क़रार-प्रथा ने 'स्त्रियों को स्वतंत्र सामाजिक और यौन कामनामय प्राणियों के रूप में जीने का कोई अवसर प्रदान नहीं किया'; स्त्रियाँ बल्कि ओवरसियरों के यौन उत्पीड़न की और भारतीय पुरुषों के बीच प्रतिस्पर्धा की वजहें थीं।[60] एक और सतह पर केल्विन सिंह ने यह तर्क दिया है कि त्रिनिदाद में औपनिवेशिक क़ानूनों ने इस बात को रेखांकित किया कि क़रारबंद पुरुषों की पत्नियाँ अपने पतियों पर निर्भर नहीं थीं और इसलिए उनको अपनी रोज़ी की तलाश ख़ुद करनी पड़ती थी। इस क़ानून के अनुसार 'जिस क़रारबंद स्त्री का पति जेल में या हस्पताल में हो, उसे दोस्त या रिश्तेदार राहत नहीं दे सकते थे।'[61] बृज लाल ने भी बाग़ान में क़रारबंद स्त्रियों की 'बेइज़्ज़ती' संबंधी चेतना पर ज़ोर दिया है, और कुंती प्रकरण को स्त्री होने से जुड़े रूढ़ विश्वासों के ख़िलाफ़ एक प्रतिरोध के रूप में दर्शाया है।[62] जॉन डी केली का तर्क है कि मज़दूर बाग़ान में पारिवारिक जीवन जिएँ, प्लांटर ऐसा नहीं चाहते थे। लेकिन जैसा कि मेरीना कार्टर ने संकेत दिया है, बाग़ान वाले उपनिवेशों में

---

[58] मरीना कार्टर (1995), पूर्वोक्त : 59.

[59] पी.सी. एमर (1985), पूर्वोक्त : 247.; रेडक, रोड, (1985) फ़्रीडम डिनाइड : इंडियन वूमन ऐंड इन्डेन्चरशिप इन ऐंड त्रिनिदाद और टोबैगो (1845-1917), *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, 20 (43) : 84-85.

[60] बील, जे, 1990,विमेन अंडर इन्डेन्चर इन कोलोनियल नेटाल , 1860-1911, सी.क्लार्क आदि द्वारा संपादित साउथ आसिआन ओवरसीज में संकलित.

[61] केल्विन सिंह (1985), *इंडियंस ऐंड लार्जर सोसाइटी, ला गुएरे, फ़्रॉम कलकत्ता टू करोनि ऐंड इंडियन डायस्पोरा*, में संकलित : 45, *त्रिनिदाद : द युनिवर्सिटी ऑफ़ वेस्ट इंडीज़*.

[62] बृज. वी. लाल, (1985), *कुंती क्राय : इंडेचर्ड, विमेन ऑन फ़िजी प्लांटेशन्स*, इंडियन इकनॉमिक ऐंड सोशल हिस्ट्री रिव्यु, 42 (1) : 71.; बृज वी, लाल (1985), वील ऑफ़ डिसॉनर : सेक्सुअल जेलसी ऐंड सुसाइड ऑन फ़िजी प्लांटेशन्स, जर्नल ऑफ़ पैसिफ़िक हिस्ट्री 10 : 154-55.

पारिवारिक जीवन पूरी तरह ग़ायब नहीं था। कार्टर के अनुसार भारत की क़रारबंद स्त्रियाँ अक्सर-बेशतर बसाव वाले इलाक़ों की आधिकारिक व्यवस्था से बाहर एक स्थायी जोड़ा बना ही लेती थीं।[63]

अपनी छानबीन के दौरान ग्रियर्सन को इस व्यापक विश्वास का पता चला कि भर्ती करने वाले लोग सीधी-सादी स्त्रियों से धोखा करके उनको वेश्या बना देते थे। एक शिक्षित व्यक्ति ने ग्रियर्सन पर भरोसा करके यह बतलाया कि 'एजेंट और उनके आदमी ग़रीब, यहाँ तक कि सम्मानित, परिवारों की भी बीवियों और बेटियों को फुसलाकर भगा ले जाते थे।'[64] उन्होंने पाया कि ऐसे विश्वास उन इलाक़ों में प्रचलित थे जहाँ प्रवास का कोई ख़ास ज्ञान नहीं था। ग्रियर्सन ने स्त्रियों की उन श्रेणियों के बारे में पता किया जो क़रारबंद प्रवास करती थीं। उन्होंने पाया कि प्रवास के लिए चार तरह की स्त्रियाँ नाम दर्ज कराती थीं: (अ) प्रवासियों की (आम तौर से दोबारा प्रवास करनेवालों की) पत्नियाँ; (ब) मित्रों से वंचित और भूखों मर रही विधवाएँ; (स) विवाहित स्त्रियाँ जिनका अपने पतियों के घर से किसी प्रेमी के साथ या उसके बिना भी भागने के कारण सामाजिक बहिष्कार किया गया हो; या जिनको उनके पतियों ने निकाल बाहर किया हो; और (द) वेश्या समझी जानेवाली स्त्रियाँ, जिनसे मुराद मूलतः अपने परिवारों से कट चुकी और किसी सहारे से वंचित मोहताज, निर्धन स्त्रियाँ होती थीं।[65]

ग़ौर करने की अहम बात यह है कि जो स्त्रियाँ कम उम्र में ही विधवा हो जाती थीं, जिनकी सामाजिक स्थिति हीन होती थी या जो रिश्तेदारों द्वारा त्याग दी जाती थीं, उनके लिए क़रार-प्रथा बचाव का एक रास्ता बन जाती थी। ऐसी अनेक स्त्रियाँ बनारस, मथुरा और वृंदावन जैसे तीर्थस्थानों में पनाह लेती थीं, जहाँ वे मंदिरों के पुजारियों और दूसरे साधुओं के साथ रहने के लिए मजबूर कर दी जाती थीं। गुएत्र बहादुर ने अपने हालिया ऐतिहासिक उपन्यास *कुली विमेन दि ओडिसी ऑफ़ इंडेंचर* में इन हालात में विधवाओं की मुमकिन दशाओं का एक विस्तृत वर्णन किया है।[66] जो स्त्री किसी प्रेमी के साथ भाग चुकी हो उसके लिए क़ुली बनने का विकल्प ही बचता था – कारण कि भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक मानदंडों के अनुसार अंतर्जातीय विवाह निषिद्ध था। बिहार के शाहाबाद जैसे ज़िलों में, जहाँ प्रवास को लोकप्रियता प्राप्त थी, ग्रियर्सन ने देखा कि आख़िरी सहारे के तौर पर विधवाएँ ख़ुद एजेंटों की तलाश करती थीं और अपने आपको गिरमिटिया के रूप में पेश करती थीं। शैशव मृत्यु की भारी दर और (अक्सर रजस्वला होने से भी पहले) प्रायोजित विवाह की कम आयु के कारण विधवापन आम था। कमउम्र विधवाओं को प्रथा के अनुसार पुन:विवाह की अनुमति नहीं होती थी और उनको बोझ समझा जाता था। एजेंटों के रजिस्टरों से पता चलता है कि उनकी भर्ती की सूचियों

---

[63] मरीना कार्टर (1995), पूर्वोक्त : 4-5.

[64] ग्रियर्सन रिपोर्ट, अनुच्छेद 131.

[65] उपरोक्त, अनुच्छेद 131.

[66] गुएत्र बहादुर (2014), *कुली विमेन : द ओडिसी ऑफ़ इन्डेन्चर*, हैचेट, गुरुग्राम.

में एक बड़ा भाग विधवाओं का होता था। मुमकिन है कि इसका कारण रिश्तेदारों द्वारा त्याग दिए जाने के बाद उनकी ग़रीबी हो। ग्रियर्सन ने यह बात मानी है कि कुछ मिसालों में क़रारबंद प्रवास के लिए अपने नाम दर्ज कराने वाली स्त्रियों को एजेंट फुसला लेते थे, मगर विवाहित स्त्रियों को फुसलाना कोई आसान काम नहीं होता था। कारण कि पकड़े जाने पर मुमकिन था कि एजेंट को पीट-पीटकर उसकी जान ले ली जाए। अगर वह बच भी निकलता तो उसके ख़िलाफ़ मुआमला दायर होता था और उसे सज़ा मिलती थी।[67] इस तरह पिचर के अनुसार क़रारबंद प्रवास 'सद्मार्ग से भटकी लड़की या स्त्री के लिए' या बदनसीबी की शिकार स्त्री के लिए एक रास्ता खोल देता था'।[68] पिचर ने देखा कि 'आज प्रवास करने वाली स्त्रियों में एक बहुत बड़ा भाग उन लोगों का है जो घर से बाहर कर दी गई हैं या फिर अकाल या महामारी के कारण अपने दोस्तों से जुदा हो चुकी हैं; इनमें कुछ हिंदू लड़कियाँ थीं जो किसी सांप्रदायिक दंगे के दौरान मुस्लिम बनने पर मजबूर कर दी गई थीं; अनेक तो विधवाएँ थीं।'[69] इसलिए पिचर ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रवास से हो सकता है कि पुरुषों से अधिक स्त्रियाँ लाभान्वित हो रही हों।

ग्रियर्सन ने प्रवास को परेशान स्त्रियों के लिए एक ज़रूरी रास्ता भी माना। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि बेहतरीन क़िस्म की मज़दूर स्त्रियाँ उनमें से आती थीं जो त्याग दी गई हैं, या फिर अपतिव्रता स्त्रियों में से आती थीं जो अपने घर के माहौल से निकलकर एक नई शुरुआत कर सकती थीं। (उनके लिए विकल्प फिर वेश्यावृत्ति का ही रहता था।) अनेक मजिस्ट्रेट किसी भागी हुई पत्नी को दर्ज करने से इनकार कर देते थे, लेकिन ग्रियर्सन ने ऐसे मुआमलों में स्त्रियों के अधिकारों को स्वीकार किया और कहा कि अगर घर से कटी कोई स्त्री जाने पर आमादा ही हो तो किसी भी अफ़सर को 'उसे रोकने का कोई अधिकार नहीं है।'[70] रूढ़िवादी भारतीय समाज और आंग्ल-भारतीय अफ़सरशाही, दोनों के लिए यह एक उग्र सुधारवादी सुझाव था।

स्त्री-प्रवास की व्यवस्था के बारे में ग्रियर्सन ने और दूसरे लोगों ने औपनिवेशिक क़ानून के सामने समानता का और औपनिवेशिक भारत के श्रम बाज़ार में लिंगभेद के बिना एकरूपता का हवाला दिया। शाहाबाद के कलेक्टर के अनुसार 'क़ानून में स्त्रियों को पुरुषों की ही तरह जहाँ मन चाहे, जाने का अधिकार है, और मैं इसे छीनने से रहा।' अपनी तरफ़ से ग्रियर्सन ने सिफ़ारिश की कि 'किसी भी विवाहित या अविवाहित मुल्की स्त्री को अपने ऊपर लागू होनेवाला कोई भी अनुबंध करने का पूरा-पूरा अधिकार है।'[71] समिता सेन ने असम के चाय बाग़ान में काम करने के अनुबंध पर दस्तख़त करने के बारे में एक स्त्री के अधिकार के

[67] ग्रियर्सन रिपोर्ट, अनुच्छेद 130 : 30.

[68] पिचर रिपोर्ट : 7.

[69] पिचर रिपोर्ट : 7.

[70] ग्रियर्सन रिपोर्ट, अनुच्छेद 138 : 32.

[71] उपरोक्त.

सिलसिले में इसी मुद्दे की विवेचना की है।[72] दूसरी ओर 'भारतीय परंपरा' हमसे यह मनवाना चाहती है कि कोई भी स्त्री अपने पति की इजाज़त के बग़ैर घर छोड़ना भी चाहे तो नहीं छोड़ सकती। यह भी कि भागकर या निकाली जाकर अगर वह घर से बाहर होती है तो उसका पति शायद ही उसे वापस लेगा। इस तरह ग्रियर्सन इस बात पर पिचर से सहमत थे कि प्रवास उन लोगों के लिए एक अहम रास्ता था जिन पर समाज ने 'भगोड़ी' या 'अपतिव्रता स्त्री' का ठप्पा लगा दिया है और जो कलकत्ता स्थित डिपो में या फिर उपनिवेशों में सगाई करके अपना चरित्र वापस पा सकती थीं।[73] अन्यथा, ऐसी स्त्रियों के लिए सिर्फ़ दो रास्ते खुले होते थे – आत्महत्या या वेश्यावृत्ति। कलकत्ता के लाल बाज़ार/चकलाघर की – नगर के 'रेड लाइट' इलाक़ों की – अनेक स्त्रियाँ ऐसी ही सामाजिक-सांस्कृतिक सोच की पैदावार थीं। लेकिन अहम बात यह भी है कि स्वयं स्त्रियों की निमित्ति को कम करके न आँका जाए। जैसा कि शाहिद अमीन ने कहा है, उढ़री, डोलकढ़ी वग़ैरह परंपरागत भोजपुरी शब्द 'ग्रामीण स्त्रियों की इस प्रवृत्ति को, जो किसी भी तरह से महत्त्व हीन नहीं है, व्यक्त करते हैं कि वे दुख से भरे ससुराली मकान से बाहर निकलकर और किसी और पुरुष से विवाह करके या बिना विवाह किए उसके साथ बस जाती हैं।' औपनिवेशिक पुरुषवादी रवैयों के चश्मे से देखें तो भोजपुरी समाज में बहुतायत में होने के बावजूद ऐसी 'स्वतंत्र' स्त्रियाँ ग्रियर्सन की रिपोर्ट में बस इक्का-दुक्का नज़र आती हैं।[74]

क्रिस्पिन बेट्स और मेरीना कार्टर ने उन ज़मींदोज़ तंत्रों के साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं जिनके ज़रिए क़रारबंद मज़दूर भारत से बाहर जा रहे थे या काम पा रहे थे। उनकी राय में क़रार-प्रथा के इतिहासकारों ने इसे दासता और स्वतंत्रता के संवाद के ज़रिए पेश किया है और इस तरह प्रवास की भूमिगत रणनीतियों को समझने में नाकाम रहे हैं। उनकी राय में 'वापस आनेवाले लोगों, सरदारों और एजेंटों ने क़रार-प्रथा का एक ऐसा गतिशास्त्र तैयार किया जो स्पष्ट रूप से दुनिया भर में अपनी दुनिया ख़ुद रचनेवाले प्लांटर/प्रशासक से अलग कार्यरत था।'[75] ग़रीबी, अकाल और जातिगत उत्पीड़न समेत घोर मुश्किलों के अनुभव ढाँचागत दमन के संदर्भ के अंदर प्रवास के कुछ ऐसे फ़ैसले करा लेते थे जिनके कारण 'निमित्ति' या 'मुक्त संकल्प' के किसी सुस्पष्ट व्यवहार का सुझाव समस्याग्रस्त मालूम होता है। फिर भी 19वीं सदी के उत्तर

---

[72] समिता सेन, अनसेटलिंग द हाउसहोल्ड : ऐक्ट VI (ऑफ़ 1901) ऐंड द रेगुलेशन ऑफ़ विमेन मायग्रेंट्स इन कोलोनियल बंगाल, 'पेरीफ़ेरल' लेबर? स्टडीज़ इन द हिस्ट्री ऑफ़ पार्शियल प्रोलिटेरियनाइज़ेशन, *इंटरनेशनल रिव्यु ऑफ़ सोशल हिस्ट्री*, 4 : 135-156, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.

[73] ग्रियर्सन रिपोर्ट, अनुच्छेद 134 : 31; 23 दिसंबर की डायरी : 10 भी देखें.

[74] इस सिलसिले में *अ कॅन्साइज़ इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ नॉर्थ इंडियन पेज़ॅन्ट्स लाइफ़,* नई दिल्ली, मनोहर में : 47-48.पर शाहिद अमीन की टिप्पणी देखें। धनंजय सिंह, *भोजपुरी प्रवासी श्रमिकों की संस्कृति और भिखारी ठाकुर का साहित्य*, एनएलआई रिसर्च स्टडीज़ सीरीज़, संख्या 084/2008, वी.वी. गिरि नैशनल लेबर इंस्टीट्यूट, नोएडा, उत्तर प्रदेश, 2008, भी देखें.

[75] क्रिस्पिन बेट्स और मरीना कार्टर (2012), पूर्वोक्त, देखें, ऊपर टिप्पणी 57 : 73.

भारत में अनेक प्रवासियों को क़रारबंद प्रवास में जीवन की बाधाओं और विपत्तियों से बचकर निकलने की गुंजाइश दिखाई पड़ी। या फिर इसमें उनको एक सोपानबद्ध और अक्सर दमनमूलक ग्रामीण समाज में उस शाश्वत बंधन से बाहर निकालने का रास्ता दिखाई पड़ा जिनका अनुभव किसानों को करना पड़ता था। यह बात निचली जातियों के लिए ख़ास तौर पर सही है जिनको समुद्रपारीय बाग़ान में जाति पर आधारित दायित्वों, अपेक्षाओं और उत्पीड़न में ढील का अनुभव हुआ। वे बाहर जानेवाले कोई अकेले लोग नहीं थे और क़रार-प्रथा मँझोली और ऊँची जातियों के भी अनेक लोगों को आकर्षित करती थी। ऐसा प्रवास परंपरागत ज़मींदारों और भूस्वामियों में निराशा की भावना पैदा करता था। वे प्रवास को उन मज़दूरों से वंचित हो जाना समझते थे जो अनेक पुश्तों से उनके साथ बँधे हुए रहे।[76] ज़मींदारों का आरोप था कि सरकार और उसके एजेंट निचली जातियों को बहका रहे थे क्योंकि ऊँची जातियों से प्रवास कराना आसान नहीं था। ग्रियर्सन ने शाहाबाद के एक अंग्रेज़ी बोलने वाले ज़मींदार के एक पत्र का हवाला दिया है :

> इस हलक़े में मुल्की बिरादरी पूरी तरह प्रवास के ख़िलाफ़ है। इस ज़िले में मैं अपने अनुभव को, और इस बारे में जो छानबीन मैंने की है उसे, सामने रखने की इजाज़त चाहूँगा — कि साल के किसी भी भाग में श्रमिक वर्ग को काम की कमी नहीं होती; आषाढ़, श्रावण, कार्तिक और चैत के महीनों में श्रम की माँग बल्कि बहुत अधिक होती है। जनता के निचले वर्गों में, मसलन दुसाधों और चमारों में, हो सकता है प्रवास का लोभ काम कर जाए, लेकिन ऐसी मिसालें बहुत दुर्लभ होंगी। ऊँचे वर्गों के लोग, जिनके अपने जातिगत पूर्वाग्रह होते हैं, किसी भी प्रलोभन से भारत छोड़ना नहीं चाहेंगे। प्रवास के बारे में मुल्की लोगों की आपत्तियाँ मुख्यतः जातिगत पूर्वाग्रहों के कारण हैं। इसके अलावा इस देश में काम की कोई कमी नहीं है; लोग इसे तब भी छोड़ना नहीं चाहते जब वे मुश्किल से ज़िंदगी की ज़रूरतें पूरा कर पाते हैं।[77]

ऐसे गप्पों की काट के लिए ग्रियर्सन ने स्वयं उपनिवेशों में भेजे गए प्रवासियों के जातिवार आँकड़े पेश किए और दिखाया कि इस क्षेत्र में दो तिहाई प्रवासी ऊपरी और दरमियानी सामाजिक स्तरों के थे। (तालिका 5 देखें।)

---

[76] ज्ञान प्रकाश ने दिखाया है कि दक्षिण बिहार के गया ज़िले में कमिया लोग किस तरह ज़मींदारों से पुश्त-दर-पुश्त बँध जाते थे. ऐसे बंधन के चलते मुमकिन है कि मज़दूरी दिलाने वाले प्रवास को ये कामिया लोग ज़मींदारों के शारीरिक-सामाजिक दमन से निकलने के लिए उम्मीद की किरण समझते रहे हों. ज्ञानप्रकाश (1990), *बांडेड हिस्टरीज़ : जीनियॉलजीज़ ऑफ़ लेबर सर्विट्यूड इन कोलोनियल इंडिया, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस देखें.*

[77] ग्रियर्सन रिपोर्ट, अनुच्छेद 78 :17.

तालिका-5

आरा ज़िले से गए प्रवासियों का जातिगत वितरण, 1882 में दर्ज[78]

जाति का नाम	प्रवासियों की संख्या	
अ) मुसलमान		264
ब) हिंदू		
1-ऊँची सामाजिक स्थितिवाले		
(क) छत्री	123	
(ख) ब्राह्मण	81	
(ग) राजपूत	27	
योग		**231**
2-मँझोली सामाजिक स्थिति वाले		
(क) ग्वाला	163	
(ख) कोइरी	64	
(ग) कुर्मी	60	
(घ) कहार	55	
(ङ) माली	25	
(च) तेली	17	
(छ) नेपाली	15	
(ज) कायस्थ	12	
(झ) कलवार	11	
(ञ) बनिया	10	
(ट) घटवा	17	
(ठ) सोनार	5	
(ड) धनुक	4	
(ढ) अन्य	6	
योग		**454**
3-निम्न सामाजिक स्थिति वाले		
(क) चमार	54	
(ख) दुसाध	52	
(ग) भर	15	
(घ) हजाम	13	
(ङ) नोनिया	12	
(च) कैबर्त	11	
(छ) धोबी	10	
(ज) अन्य	110	
योग		**277**
हिंदुओं का योग		**962**
महायोग		**1,226**

[78] उपरोक्त, अनुच्छेद 152 : 36.

शाहाबाद ज़िले में प्रवास के रजिस्टरों पर ग्रियर्सन की छानबीन ने उपनिवेशों को जाने वाले लोगों में ऊँची और मँझोली जातियों का हिस्सा दिखाया। (तालिका 6 देखें।)

तालिका-6

शाहाबाद ज़िले से ऊँची और मँझोली जातियों के प्रवासी

जाति का नाम	प्रवासियों की संख्या
छत्री	51
अहीर	32
कोइरी	17
कहार	16
कुर्मी	10
चमार	9
ब्राह्मण	7
दुसाध	6
कलवार	5
गेरी	5
बिंद	3
पासी	3
नोनिया	3
भर	2
हजाम	2
ओड़िया	2
तेली	2
मुसहर	1
बढ़ई	1
कायस्थ	1
धोबी	1
सोनार	1
गंधर्प	1
योग	**185**

स्रोत: ग्रियर्सन रिपोर्ट, डायरी, पृ. 31

उपरोक्त आँकड़ों के आधार पर आगे ग्रियर्सन ने यह तर्क दिया कि 185 हिंदुओं में 133 ऊँची-मँझोली सामाजिक स्थितियों वाले थे, तथा 9 दलितों यानि 'अछूतों' में चमार और 6

दुसाध जाति के थे।[79] इन परिणामों की पुष्टि बृज लाल और मेरीना कार्टर जैसे विद्वानों के विश्लेषणों से होती है; उनका तर्क यह है कि भर्ती होनेवाले गिरमिटिया मज़दूरों का सामाजिक, जातिगत और जनांकीय वितरण कुल मिलाकर ग्रामीण उत्तर भारत के समाज में उनकी स्थिति को ही गहराई से प्रतिबिंबित करता है।[80]

अगर क़रारबंद प्रवास भारत की कठिनाई भरी सामाजिक, आर्थिक या जीने की दशाओं से निकलने का रास्ता पेश करता था तो इसमें परिणामों और अनुभवों का एक पूरा दायरा भी शामिल था। ग्रियर्सन की मुलाक़ात वापस आनेवाले कुछ ऐसे लोगों से भी हुई जिन्होंने क़रारबंद मज़दूरी के दौरान कुछ पैसे बचा लिए थे। उन्होंने नबी बख़्शी जैसे लोगों की मिसाल दी जो जमैका में 9 साल गुज़ारकर और बचत के 1,800 रुपये लेकर वापस आए थे।[81] एक और – गोवर्धन पाठक – डेमेररा से 10 साल बाद 1,500 रुपये की बचत के साथ लौटे थे। उन्होंने अपनी जाति के लोगों को उपहार और भोज देकर 'बिरादरी में वापस क़ुबूल किए जाने के लिए' 300-400 रुपये ख़र्च किए, एक बाग़दार मकान ख़रीदा और अपने बड़े से परिवार के साथ एक कामयाब गन्ना-किसान बन गए। एक और मिसाल नन्हकू की थी जो 500-600 रुपये लेकर मॉरीशस से लौटे। उन्होंने जाति में वापसी के लिए 100 रुपये ख़र्च किए और एक सफल कारोबारी किसान बन गए। बहुत से दूसरे लोग भी भारत लौटे और बक्सर के शेख़ घूरा (घूरा ख़ान) की तरह के कामयाब एजेंट बने।[82] मेरीना कार्टर ने उस प्रक्रिया का एक सुंदर विश्लेषण प्रस्तुत किया है जिसमें घूरा ख़ान जैसा एक वापस पलटा हुआ प्रवासी एक एजेंट बन जाता था। कार्टर की राय में यह रणनीति गन्ने के टापुओं के लिए भारत से श्रमबल की लामबंदी की थी, क्योंकि वापस आने वाले लोग उपनिवेशों में काम और जीवन की दशाओं के बारे में बेहतरीन जानकार साबित होते थे।[83] कार्टर का तर्क है कि वापस लौटने वालों को भर्ती के काम पर लगाना सिर्फ़ एक रणनीति और लागत-प्रभावी तरक़ीब ही नहीं थी बल्कि क़रार-प्रथा के आलोचकों द्वारा दिए जाने वाले तर्कों का तोड़ भी थी।[84] वे कहती हैं कि 'मॉरीशस में भारतीय सामाजिक और आर्थिक ताने-बाने में, जो बाग़ान से स्वतंत्र थे, नए आने वालों को खपाकर वापस पलटे लोगों ने उपनिवेश की ओर प्रवासियों को खींचने का काम किया, बावजूद इसके कि ऐसे मज़दूरों के लिए वहाँ संभावनाएँ बहुत ही कम थीं।'[85]

---

[79] उपरोक्त, अनुच्छेद 78 : 17; 4 और 5 जनवरी की डायरी : 31 भी देखें.

[80] बृज.वी. लाल, *गिरमिटिया*, अध्याय 3 : 99-121; मरीना कार्टर (1995), पूर्वोक्त, अध्याय 3 : 77-119 देखें.

[81] ग्रियर्सन रिपोर्ट; 27 दिसंबर की डायरी : 17 भी देखें.

[82] उपरोक्त; 6 जनवरी की डायरी : 32-33 भी देखें. ऐसे आयोजनों के लिए प्रचलित शब्द 'जाति-भोज' है.

[83] मरीना कार्टर (1995), पूर्वोक्त : 65.

[84] मरीना कार्टर, 'स्ट्रैटजीज़ ऑफ़ लेबर मोबलाइजेशन इन कोलोनियल इंडिया : द रिक्रूटमेंट ऑफ़ इंडियन इंडेचर्ड वर्कर्स फ़ॉर मॉरिशस', *जर्नल ऑफ़ पेज़ेन्ट्स स्टडीज़*, 19(3-4) : 229-30.

[85] उपरोक्त.

निष्कर्ष

प्रस्तुत लेख उत्तर भारत में सल्तनत की स्थापना के समय से ही प्रवास के ऐतिहासिक ढर्रों के साक्ष्य सामने रखकर भारतीय किसानों और मज़दूरों के जड़त्व की धारणा को चुनौती देता है। क़रारबंद प्रवास भारत में उपनिवेश-काल के दौरान ऐसे ही प्रवास का हिस्सा बन गया। उसके बाद से तो किसानों और मज़दूरों को, जो अभी तक अंतर्देशीय प्रवास ही करते थे, समुद्रपार कैरीबियन, प्रशांत महासागर और हिंद महासागर के दूरदराज़ बाग़ान में काम के लिए जाने का एक रास्ता दिखाई पड़ा। क़रार को अंतर्देशीय प्रवास से अलग दिखाने के लिए भारतीय किसानों ने इस व्यवस्था के बारे में ख़ुद की शब्दावलियाँ विकसित कीं। ये शब्दावलियाँ क़रार-प्रथा के बारे में उनके ज्ञान के प्रमाण हैं। प्रवासी जब उपनिवेशों में काम करते थे तो वापस गाँव में रह गए रिश्तेदारों के साथ एक ताना-बाना सिरज लेते थे और एक बेहतर जीवन की संभावना जताकर उनको क़रार के तहत लंबी यात्रा के लिए प्रोत्साहित करते थे। वे पीछे रह गए अपने परिवारों को पैसे भी भेजते थे। भेजे गए बहुत सारे पत्र और पैसे प्रवासियों और भारत में उनके परिवारों के बीच संचार-संबंध की पुष्टि करते हैं। फिर भी औपनिवेशिक प्रवास श्रमिकों के पहले से चले आ रहे उस अंतर्देशीय प्रवास से अनेक अर्थों में भिन्न भी था जो प्रवासियों को घरवापसी का अधिक अवसर देता था। आनंद यैंग ने दिखाया है कि बिहार के सारण ज़िले से किस तरह बंगाल और आसपास के दूसरे राज्यों की तरफ़ मौसमी प्रवास चलता रहता था।[86] क़रार के तहत समुद्रपारीय प्रवास का मतलब था काफ़ी लंबी ग़ैर-हाज़िरी और वापसी के कम अवसर। लंबी दूरी के कारण परिवार से दुखद अलगाव, क़रारनामों की काम-संबंधी शर्तें और उपनिवेश के देशों में प्रवासियों के स्थायी बसाव की संभावना – इनसे यह समझने में मदद मिल सकती है कि डिपो में ही प्रवासियों के विवाह के बारे में औपनिवेशिक सरकार क्यों गहरी दिलचस्पी ले रही थी और इसके बारे में बहुत अधिक चिंतित थी जबकि विदेश जा रहे बहुत से प्रवासी पहले से ही शादीशुदा होते थे।[87] प्रवासी स्त्रियों के कोटे के बारे में बने क़ानूनों से यह चिंता स्पष्ट थी। मिसाल के लिए, 1864 के इंडियन एमिग्रेशन एक्ट में एक कठोर नियम यह था कि उपनिवेशों में जानेवाले हर जहाज़ में 32 प्रतिशत (40 :100) स्त्रियों का कोटा पूरा किया जाए। इसका कारण यह हो सकता है कि प्रवास के प्रागैतिहास में पत्नी से पति के अलगाव का तथ्य भी होता था क्योंकि बाहर जाने वाले लोग प्रायः विवाहित होते थे। क़रार-प्रथा के तहत उनको इस स्पष्ट अभिप्राय के साथ बाहर भेजा जाता था कि उपनिवेशों की श्रम की आवश्यकताएँ जो पूरी कर सके, ऐसा एक स्थायी नया समुदाय बनाकर मुल्की या पहले से बसे समूहों को कमज़ोर या विस्थापित किया जाए। फलस्वरूप संबंध के अधिक स्थायी रूप के तौर पर डिपो विवाह में औपनिवेशिक अधिकारियों की गहरी रुचि रहती थी। वे इसे

---

[86] आनंद यांग (1989), द *लिमिटेड राज : अग्रेरियन रिलेशन्स इन कोलोनियल इंडिया*, सारण डिस्ट्रिक्ट, 1793-1920, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

[87] उत्तर भारत में विवाह की सामान्य आयु लड़के के लिए 15 साल और लड़की के लिए 10 साल थी.

प्रोत्साहित भी करते थे, बनिस्बत इसके कि स्त्रियों को बुलाएँ या प्रवासियों की यौन-आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसी तरह स्त्रियों का बंदोबस्त करें जिस तरह उन्होंने भारत की फ़ौजी छावनियों में 'लाल बाज़ारों' का बंदोबस्त करके किया था।[88]

संदर्भ

आनंद यांग (1979), 'पेज़ेन्ट्स ऑन मूव : अ स्टडी ऑफ़ इंटर्नल माइग्रेशन इन इंडिया', 10(1), *जर्नल ऑफ़ इंटरडिसिप्लिनरी हिस्ट्री*.

आनंद यांग (1989), द *लिमिटेड राज : अग्रेरियन रिलेशन्स इन कोलोनियल इंडिया*, सारण डिस्ट्रिक्ट, 1793-1920, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

एमिग्रेशन एजेंट रेमिटन्सेज़ फ़्रॉम नेटाल, 1881-1884, इंडियन एमीग्रेशन [आगे से : आई आई], बी 1/8, नेटाल आर्काइव्स डीपो, पीटरमारिट्ज़बर्ग.

एल.एफ़. रशब्रुक विलियम (1924), *इंडियन एमिग्रेशन बाय इमिग्रेंट्स , इंडिया ऑफ़ टुडे*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन.

क्रिस्पिन बेट्स और मरीना कार्टर (2012), *एन्स्लेव्ड लाइन्स, ऐंसलेविंग लेबल्स : अ न्यू एप्रोच टू द कोलोनियल इंडियन लेबर डायस्पोरा*, सुकन्या बनर्जी, एम्स मैकग्विनीज़ और स्टीवन सी मैक (सं.) *न्यू रुट्स फ़ॉर डायस्पोरा स्टडीज़*, इंडियाना युनिवर्सिटी प्रेस में संकलित, इंडियाना.

केल्विन सिंह (1985), *इंडियंस ऐंड लार्जर सोसाइटी, ला गुएर, फ़्रॉम कैलकटा टू करोनि ऐंड इंडियन डायस्पोरा*, द युनिवर्सिटी ऑफ़ वेस्ट इंडीज़, त्रिनिदाद.

जी.ए. ग्रियर्सन (1883), *रिपोर्ट, मेजर पिचर ऐंड ग्रियर्सन इन्क्वायरी इंटू एमिग्रेशन*, रेवेन्यू ऐंड ऐग्रिकल्चर, एमिग्रेशन, ए प्रोसिडिंग्स संख्या 9-15, अगस्त 1883.

__________(1884), *परिशिष्ट एक, सेवेन ग्रामर्स ऑफ़ द डायलेक्ट्स ऐंड सब - डायलेक्ट्स ऑफ़ द बिहारी लैंग्वेज*, पार्ट 2, कलकत्ता.

जेम्स नोर्गेट (1861), फ़्रॉम सिपॉय टू सूबेदार, सीताराम द्वारा प्रेषित, विकास पब्लिकेशन, पंजाब.

जे. बील (1990), विमेन अंडर इन्डेन्चर इन कोलोनियल नेटाल,1860-1911, सी. क्ला, साउथ एशिया ओवरसीज़ में संकलित.

डब्ल्यू.जी. आर्चर (1942), 'सीज़नल सॉन्स ऑफ़ पटना डिस्ट्रिक्ट', *मैन इन इंडिया*, 22 (247).

डी.एच. ए. कोल्फ़ (1990), *नौकर, राजपूत ऐंड सिपॉय : द एथ्नोहिस्टोरी ऑफ़ द मिलिट्री लेबर मार्केट इन हिंदुस्तान*, 1450-1850, केम्ब्रिज, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.

धनंजय सिंह (2008), *भोजपुरी प्रवासी श्रमिकों की संस्कृति और भिखारी ठाकुर का साहित्य*, एनएलआई रिसर्च स्टडीज़ सीरीज़, संख्या 084/2008, वी.वी. गिरि नैशनल लेबर इंस्टीट्यूट, नोएडा, उत्तर प्रदेश.

ब्रिटिश पार्लियामेंटरी पेपर्स, सत्र 1 (45), 1841.

[88] ब्रिटिश सरकार पत्नियों की ग़ैर-मौजूदगी में ब्रिटिश बटालियन की कामेच्छा की पूर्ति के लिए वेश्याओं का प्रबंध करती थी. ऐसा करते समय सरकार जातिगत वरीयताओं पर भी ध्यान देती थी. इस प्रश्न की विस्तृत विवेचना के लिए अलवी, सीमा, 1995, *सिपॉय ऐंड द कंपनी*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.; कोल्फ़ (1990), नौकर, राजपूत ऐंड सिपॉय, केम्ब्रिज : केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, देखें, ऊपर टिप्पणी 3.

पी.सी. एमर (1985), पूर्वोक्त, रेडक, रोड, 1985. 'फ़्रीडम डिनाइड : इंडियन विमेन ऐंड इन्डेचर्डशिप इन त्रिनिदाद ऐंड टोबैगो, 1845-1917', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* 20 (43).

बृज.वी. लाल (1985) 'कुंती क्राई : इन्डेन्चर्ड विमेन ऑन फ़िजी प्लांटेशन्स', *इंडियन इकनॉमिक ऐंड सोशल हिस्ट्री रिव्यु* 42(1).

__________(1985), *वील ऑफ़ डिशऑनर : सेक्सुअल जेलसी ऐंड सुसाइड ऑन फ़िजी प्लांटेशन्स, जर्नल ऑफ़ पैसिफ़िक हिस्ट्री,* 10.

__________(2000), *चलो जहाजी : ऑन जर्नी थ्रू इन्डेन्चर इन फ़िजी,* सुवा म्यूज़ियम, कैनबरा.

__________(2004), *गिरमिटिया : द ओरिजिन्स ऑफ़ द फ़िजी इंडियंस*, फ़िजी इंस्टीट्यूट ऑफ़ एप्लाइड स्टडीज़, लौटोका.

मधुकर उपाध्याय (1999), *क़िस्सा पांडे सीताराम सूबेदार*, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली.

मन्नन द्विवेदी गजपुरी (1917), *रामलाल : ग्रामीण जीवन का एक सामाजिक उपन्यास*, प्रयाग.

मरीना कार्टर (1995), सर्वेंट्स, सरदार्स ऐंड सेटलर्स, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

मरीना कार्टर (1992) *स्ट्रेटेजीज ऑफ़ लेबर मोबिलाइज़ेशन इन कोलोनियल*, द *रिक्रूटमेंट ऑफ़ इंडियन इन्डेन्चर्ड वर्कर्स फ़ॉर मॉरिशस*, जर्नल ऑफ़ पेज़ेन्ट्स स्टडीज़, 19(3-4).

मेजर पिचर (1883), *रिपोर्ट ऑन द रिज़ल्ट ऑफ़ हिज इन्क्वायरी इंटू द सिस्टम ऑफ़ रिक्रूटिंग लेबरर्स फ़ॉर द कुलीज*, रेवेन्यू ऐंड ऐग्रिकल्चर, एमिग्रेशन, ए प्रोसिडिंग्स, संख्या 1-12, फ़रवरी 1883.

राही मासूम रज़ा (2006), *आधा गाँव*, सातवाँ संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.

समिता सेन (1996), 'अनसेटलिंग द हाउसहोल्ड : एक्ट VI (ऑफ़ 1901) ऐंड द रेगुलेशन ऑफ़ विमेन माइग्रेंट्स इन कोलोनियल बंगाल', 'पेरीफेरल' लेबर? स्टडीज़ इन द हिस्ट्री ऑफ़ पार्शियल प्रोलैटैरियनाइजेशन, *इंटरनेशनल रिव्यु ऑफ़ सोशल हिस्ट्री,* 4.

सीमा अलवी (1995), *सिपॉय ऐंड द कंपनी*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

शाहिद अमीन(1995), इवेंट, मेटॉफर, मेमोरी : चौरी चौरा,1922-1992, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

__________(2005), *रेप्रेज़ेंटिंग द मुसलमान : देन ऐंड नाउ, नाउ ऐंड देन, सबाल्टर्न स्टडीज़ खंड* 12, परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली.

__________(2013) (सं), *अ कॅन्साइज़ इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ नॉर्थ इंडियन पेज़ॅन्ट्स लाइफ़*, मनोहर, दिल्ली.

शार्लत वादविले (1965), *बारहमासा : लेस शान्सान देस डूजे मोईस डेंस लेस लिटरेचर्स इंडो-आर्यंस*, पोंडिचेरी.

ह्यूज़ फ्रेज़र (1883), *फ़ॉकलोर फ़्रॉम ईस्टर्न गोरखपुर*, जर्नल ऑफ़ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, 52(1).

ज्ञान प्रकाश (1990), बॉन्डेड हिस्टरीज़ : जीनियॉलजीज़ ऑफ़ लेबर सर्विट्यूड इन कोलोनियल इंडिया, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.